ISSN-2321-3981

सचित्र प्रेरक बाल मासिक

देवपुत्र

पौष २०८०
जनवरी २०२४

₹ ३०

अवधेश विशेषांक

जय श्रीराम जयति जय हिन्दू जयतु अयोध्या धाम की

– गोपाल माहेश्वरी

सात पवित्र प्रसिद्ध पुरी में, पुरी अयोध्या पहला नाम।
जिसकी पावन रज में खेले, ईश्वर स्वयं बने श्रीराम।।
ब्रह्मा से **मरीचि ऋषि** जन्मे, बनकर के मानस संतान।
तब मरीचि से **कश्यप**, उनसे सूर्य कहाए **विवस्वान**।।
विवस्वान सुत **वैवस्वत मनु**, सूर्यवंश के नृपति प्रधान।
मनु के हुए पुत्र **इक्ष्वाकु**, उनके पुत्र **विकुक्षि** महान।।
हुए विकुक्षि के पुत्र **पुरंजन**, जीता देवासुर संग्राम।
वृषवाहन था उनका रण में, हुआ **ककुस्थ** तभी से नाम।।
वंशज इनके हुए **त्रिशंकु**, **हरिश्चंद्र** फिर **रोहिताश्व**।
रोहिताश्व से **सगर** हुए, **असमंजस** ने ढूँढ़ा यज्ञाश्व।।
अंशुमान ने वंश बढ़ाया, हुए **दिलीप** महा गौभक्त।
सुत दिलीप के हुए **भगीरथ**, गंगा लाने में अनुरक्त।।
वंशवृक्ष यह अवधेशों का, राजा **रघु** विख्यात हुए।
सूर्य वंश, इश्वाकु वंश में, रघुवंशी **अज** ख्यात हुए।।
अज के परम प्रतापी बेटे, **दशरथ** हुए सभी को ज्ञान।।
दशरथनंदन बने **राम जी**, हुई अयोध्या और महान।।
सूर्य वंश पावन परंपरा, में **लवकुश** का नाम जुड़ा।
कुश से हुए **अतिथि** अतिथि से, **अग्निवर्ण** रविवंश मुड़ा।।
अग्निवर्ण से **बृहद्पाल**, फिर उनके पुत्र ही हुए **सुमित्र**।
रामचंद्र के पूर्वज, वंशज, बहु पुराण से ज्ञात चरित्र।।
आदि सृष्टि से वंशमाल में, सुमन अनेक ज्ञात अज्ञात।
गौरवमय इतिहास जननि इस, अवधपुरी को झुकता माथ।।
कलियुग में इस पुण्यपुरी की, विक्रम नृप ने सेवा की।
देव विनिर्मित महातीर्थ को, पुनः प्रतिष्ठा आभा दी।।
कालचक्र फिर पंथ भटक कर, ध्वंसपंथ पर दौड़ गया।
बाबर ने सेनापति भेजा, पावन मंदिर तोड़ गया।।
तब संघर्ष चला वर्षों तक, राजा हो या संन्यासी।
रामजन्मभू मुक्त कराने, बलि होते भारतवासी।।
इसी बीच भारत स्वतंत्र हो, लोकतंत्र के पंथ चला।
हाय–हाय दुर्भाग्य, अयोध्या का कलंक, पर नहीं धुला।।
कोटि–कोटि हिन्दूजन ने तब, प्रलयंकर हुँकार भरी।
श्रीरामलला की जन्मभूमि, थी मुक्त हुई श्री अवधपुरी।।
न्यायालय सर्वोच्च कह उठा, जन्मभूमि श्रीराम की।
जय श्रीराम जयति जय हिन्दू जयतु अयोध्या धाम की।।
नगर–नगर तक गाँव–गाँव तक, देश विदेश में मची धूम।
हर हिन्दू का मन आनंदित, तीनों लोक उठे तब झूम।।
अद्भुत भव्य महा मंदिर, प्रभु रामलला का पावन धाम।
स्वर्णाक्षर में लिखा अवधइतिहास में आज 'जयतु श्रीराम'।।
राम अनादि अनंत अनश्वर, अजर अमर हैं परमअनूप।
जन्मभूमि पर रामलला हैं, जनश्रद्धा का दिव्यस्वरूप।।
जन्मभूमि सामान्य सभी की, सदा स्वर्ग से भी महान।
तब श्रीराम की जन्मभूमि की, कैसे महिमा करें बखान।।

– इन्दौर (म. प्र.)

सचित्र प्रेरक बाल मासिक
देवपुत्र
(विद्या भारती से सम्बद्ध)

पौष	२०८०	▪	वर्ष	४४
जनवरी	२०२४	▪	अंक	०७

प्रधान संपादक
कृष्ण कुमार अष्ठाना

प्रबंध संपादक
शशिकांत फडके

मानद संपादक
डॉ. विकास दवे

कार्यकारी संपादक
गोपाल माहेश्वरी

मूल्य

एक अंक	:	३० रुपये
वार्षिक	:	२०० रुपये
पन्द्रहवर्षीय	:	२००० रुपये
सामूहिक वार्षिक	:	१५० रुपये

(कम से कम १० अंक लेने पर)

कृपया शुल्क भेजते समय चेक/ड्राफ्ट पर केवल 'सरस्वती बाल कल्याण न्यास' लिखें।

संपर्क
४०, संवाद नगर,
इन्दौर ४५२००१ (म. प्र.)
दूरध्वनि: (०७३१) २४००४३९

e-mail:
व्यवस्था विभाग
devputraindore@gmail.com
संपादन विभाग
editordevputra@gmail.com

अपनी बात

प्यारे भैया-बहिनो!

२२ जनवरी २०२४ भारत के महान सांस्कृतिक इतिहास का अत्यन्त महत्वपूर्ण दिवस है। इस दिन सप्त पवित्र पुरियों में पहली अयोध्या पुरी में ५०० वर्षों के संघर्ष के बाद और अनेक बलिदान देकर 'श्रीरामलला' एक अतिभव्य मंदिर में पुन: विराजमान होंगे। क्रूर विधर्मी आक्रमणकारी बाबर की आज्ञा से तोड़ दिए गए श्रीराम जन्मभूमि पर स्थित भगवान श्रीराम के प्राचीन मंदिर को, विश्वभर के अगणित रामभक्तों की आस्था पर चोंट करके, विध्वंस होने के कलंक को धोने का, यह महान अवसर है।

इस ऐतिहासिक अवसर पर 'देवपुत्र' का यह अंक भगवान श्रीराम और उनके पूर्वज कुछ महा प्रतापी अयोध्या नरेशों के अल्प परिचय पर केन्द्रित है। ये सब पौराणिक कथाएँ हैं। भारतीय संस्कृति में इतिहास को पुराणों के माध्यम से प्रस्तुत करने की परम्परा रही है। अत्यन्त रोचक होने से 'पुराण कथाएँ' बाल कथा साहित्य की भी एक महत्वपूर्ण विधा है। ये कथाएँ केवल रहस्य, रोमांच ही नहीं तो हमारे मन में 'जीवनमूल्यों' की स्थापना करती हैं। इस अंक की संकलित कथाएँ भी सत्य, त्याग, शौर्य, दानशीलता, आज्ञाकारिता आदि श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक गुणों का बोध कराती है।

पुराण कथाएँ कई प्रसंगों में अविश्वसनीय कल्पना का आभास देती हैं। लेकिन हम उन्हें अपने युग की परिस्थितियों व उपलब्धियों से जोड़कर देखते हैं, इसलिए ऐसा भ्रम होता है। दूसरे पुराण कथाओं की भाँति विज्ञान कथाओं एवं रहस्य रोमांच की कथाओं में भी अनेक वर्णन अतिकाल्पनिक दिखते हैं, पर वे बाल साहित्य का अंग हैं। तब पुराणकथाओं को उपेक्षापूर्वक छोड़ने की अपेक्षा उनके नैतिक, सांस्कृतिक, मानवीय व वैज्ञानिक तत्वों को समझना चाहिए। ये कल्पनाओं-सी लगने वाली उस काल की सच्चाई, हमें अपनी सांस्कृतिक बोध से जोड़ती हैं, अच्छा मानव बनाती हैं। अनेक पुराण, अनेक कथाओं को, अनेक प्रकार से भी बताते हैं। कई कथाएँ लोक में परम्परा से प्रसिद्ध हैं। इसलिए प्रस्तुत अंक की कथाएँ भी उन विविध कथाओं में से कोई है, यह मानकर इनमें निहित मूल्यों को ही ग्रहण करना चाहिए।

श्रीरामलला के अपने मंदिर में प्रतिष्ठापना की बधाई। और सहस्त्रों प्रणाम उन सबको जिनके बलिदान या प्रयासों से यह दिवस आया है। जय श्रीराम।

आपका
बड़ा भैया

web site - www.devputra.com

॥ अनुक्रमणिका ॥

■ कथा

- सूर्यबंश : राम के पहले राम के बाद ०२
- आदिपुरुष : मनु ०५
- सत्यबादी राजा हरिश्चंद्र ०८
- आयुर्वेद से बचे सगर के प्राण ११
- महान गौ भक्त राजा दिलीप १३
- अनथक प्रयासी भगीरथ १५
- अतिथि सेवक भक्त अम्बरीष १८
- महादानी राजा रघु २०
- साहसी महाराज अज २२
- मनु-शतरूपा ही दशरथ-कौसल्या २४
- देवसहायक दशरथ २८

■ कथा

- यज्ञ से कामनापूर्ति ३०
- भए प्रकट कृपाला ३२
- अयोध्या का आनंद ३४
- कौसल्या की लोरियाँ ३६
- बालक है भगवान ३७
- सबके राम ३८
- अपनत्व का विकास ३९
- राष्ट्रधर्मरक्षकों का निर्माण ४०
- वास्तविक परीक्षा की घड़ी ४२
- राम होने का अर्थ ४४
- हजारों-हजार वर्षों पश्चात् ४७

■ आलेख - गोपाल माहेश्वरी

■ चित्रांकन - देवाशीष मन्ना

क्या आप देवपुत्र का शुल्क नेट बैंकिंग से जमा करा रहे हैं? तो कृपया ध्यान दें!

देवपुत्र का शुल्क इसकी प्रकाशन संस्था - **सरस्वती बाल कल्याण न्यास** के खाते में ही जमा कराएँ।
विवरण इस प्रकार है - खातेदार - **सरस्वती बाल कल्याण न्यास** बैंक - **स्टैट बैंक ऑफ इण्डिया, एम.वाय.एच.परिसर शाखा, इन्दौर** खाता क्रमांक-**38979903189** चालू खाता **(Current Account) IFSC- SBIN0030359** राशि जमा करने के बाद जमा पर्ची को देवपुत्र के ई-मेल **ID devputraindore@gmail.com** पर अवश्य भेजिए। नेट बैंकिंग में प्रेषक के कॉलम में पहले अपना स्थान लिखें फिर **सरस्वती शिशु मंदिर** का संक्षेप लिखें तो सन्देश ठीक आता है। उदाहरण के लिए -सरस्वती शिशु मंदिर, संजीत मार्ग, मंदसौर ने देवपुत्र का शुल्क भेजा तो उन्हें प्रेषक में लिखना चाहिए - **''मन्दसौर संजीत मार्ग SSM''** आशा है सहयोग प्रदान करेंगे।

आदिपुरुष : मनु

हो अपने कर्त्तव्य का, सबको सम्यक् बोध।
धर्मराज्य में हो नहीं, द्वंद्व, द्वेष, प्रतिशोध।।

भारतीय संस्कृति में सृष्टि का आरंभ ब्रह्मा से माना गया है, जो भगवान विष्णु के नाभि कमल से प्रकट हुए थे। इसीलिए ब्रह्मा जी को पितामह अर्थात् सारी सृष्टि का दादा जी माना गया है।

ब्रह्मा से पहले मनुष्य नहीं, बल्कि उनके मन से अर्थात् मानस पुत्र के रूप में, मरीचि व पुलस्त्य ऋषि प्रकट हुए एक राम के तो दूसरे रावण के पूर्वज हुए। ऋषि पुलस्त्य महान ज्ञानी श्रेष्ठ ऋषि थे। तुलसीदास जी ने रावण को उनके कुल का कलंक कहा है।

मरीचि से कश्यप और कश्यप से विवस्वान अर्थात् सूर्य का जन्म हुआ। यहाँ से सूर्यवंश का आरंभ हुआ।

सूर्य के पुत्र हुए वैवस्वत मनु। ये वैवस्वत मनु हम मनुष्यों के आदिपुरुष हैं। इन्हीं की संतान होने से बाद की पीढ़ियाँ **मानव** कहलायीं। वे वैवस्वत तो वे विवस्वान यानि सूर्य के पुत्र होने से कहलाए लेकिन उनका नाम था सत्यव्रत।

यह सतयुग की कथा है। तब का समाज यानि हमारे पुरखे कैसे थे ? वर्णन मिलता है कि तब न कोई राजा था न कोई राज्य यानि देश-विदेश। तब हमारा राष्ट्र और उसमें रहने वाले राष्ट्रीय लोग स्वयं ही अपने-अपने कर्त्तव्य को धर्म मानकर जीवन जीते थे। कोई किसी का अधिकार व सम्पत्ति न छीनता था, न चुराता था। जब कोई अपराध, या लड़ाई-झगड़ा ही न था, तो किसी दण्डविधान यानि कानून की भी आवश्यकता न थी। न कोई दण्ड देने वाला था

न पाने वाला। सब पूरी तरह 'सच्चे मानव' थे।

लेकिन धीरे-धीरे मनुष्यों में मेरा-तेरा की भावना जागी। ईर्ष्या, मोह, अभिमान जागे। क्रोध जन्मा। लोभ जागने लगा। तब समझदार लोगों को लगा कि हमें एक राजा की आवश्यकता है, जो हमारे आपसी विवादों को सुलझा सके, हमें समझा सके।

तब वे पितामह के पास गए। ब्रह्मा जी ने सत्यव्रत को उनका शासक बनाने की आज्ञा दी।

सत्यव्रत बोले- ''मैं शासक नहीं बनूँगा। शासक बनने वाले को अनुचित काम करने वालों को दण्ड भी देना पड़ेगा। जिसको दण्ड मिलेगा, उसे कष्ट होगा। किसी को भी कष्ट देना तो पाप है। मैं शासक बनने से पापी बन जाऊँगा।''

ब्रह्मा जी ने समझाया- ''जैसे सज्जनों की रक्षा करना पुण्य है, धर्म है, वैसे ही दुष्टों को दण्ड देना भी पुण्य है, धर्म ही है। ऐसा करने से दुष्ट को होने वाली पीड़ा का पाप नहीं लगता, क्योंकि यह दण्ड उसे सुधारने के लिए दिया जाता है। इससे उसका भी भला और समाज का भी भला ही होता है।''

तब सत्यव्रत इस धरती के पहले राजा हुए। इन्हीं की वंश परम्परा में आगे चलकर भगवान श्रीराम का अवतार हुआ।

तब सारी पृथ्वी ही एक राष्ट्र थी। सारे मानव एक-राष्ट्रीय और सबका धर्म सनातन मानव धर्म। उसके बाद राजा मनु ने अपनी प्रज्ञा से न्याय व्यवस्था विकसित की और कालान्तर में पृथ्वी पर विभिन्न राज्यों का उदय हुआ।

सुयोग्य उत्तराधिकारी

पहले राजा सूर्यवंशी मनु के वानप्रस्थ लेकर तपस्या हेतु चले जाने पर इक्ष्वाकु उनके उत्तराधिकारी बने। इक्ष्वाकु के समय कोई युद्ध न हुआ। इक्ष्वाकु इतने योग्य और लोकप्रिय थे कि उनके बाद की पीढ़ियाँ भी 'हम इक्ष्वाकु के वंशज हैं' ऐसा कहने में गौरव मानते थीं। यही कारण है कि भगवान राम सूर्यवंशीय के साथ-साथ इक्ष्वाकु वंशीय भी कहलाते हैं।

इक्ष्वाकु ने अपनी राजधानी अयोध्या को बनाया। वे अपने आठ भाइयों और एक बहिन इला में सबसे बड़े थे। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए। तब व्यवस्था की दृष्टि से राष्ट्र को उत्तरापथ और दक्षिणापथ के रूप में विभक्त कर पचास-पचास पुत्रों को व्यवस्थागत दायित्व सौंपे गए। क्योंकि मानव-सृष्टि निरंतर बढ़ते जाने से दस गुना हो चुकी थी।

इक्ष्वाकु के बड़े पुत्र का नाम विकुक्षि था। अगला राजा यही बना और इसी के एक भाई निमि के वंशज हुए थे राजा जनक, जिनका कुल सीतामाता का पालक-कुल बना।

विकुक्षि के बड़े पुत्र पुरंजन (पुरंजय) इतने प्रतापी और वीर थे कि देवताओं ने असुरों से युद्ध के समय उनकी सहायता मांगी। पुरंजन ने कहा- ''यदि अपने राजा इन्द्र सहित आप सब भी युद्ध में भाग लें, तो मैं सहायता करूँगा।'' आत्मरक्षा के लिए दूसरों से सहायता माँगने से पहले स्वयं संघर्ष करने की सीख देने वाले, पुरंजन ने यह युद्ध, बैल की पीठ पर बैठकर जीता। बैल की पीठ पर उभरा भाग 'ककुद्' कहलाता है उस पर बैठे राजा पुरंजन को सब 'ककुस्थ' कहने लगे। इसीलिए श्रीराम का एक नाम 'काकुस्थ' (ककुस्थ के वंशज) भी है।

सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र

सत्य स्वयं परमात्मा, सत्य धर्म का सार।
सत्य परम कर्त्तव्य है, सत् का पुण्य अपार।।

ककुस्थ पुरंजन के पुत्र 'त्रिशंकु' हुए जिनको सशरीर स्वर्ग भेजने के संकल्प के कारण विश्वामित्र ने एक नई सृष्टि (प्रतिसृष्टि) को बनाने तक का संकल्प ले लिया था जो ब्रह्मा जी के हस्तक्षेप से रुका।

आगे की परंपरा में भगवान श्रीराम के पूर्वजों में महान सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का नाम अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है। यहाँ तक कि वे सच बोलने के प्रतीक बन गए। आज भी सामान्य व्यवहार में सच बोलने वाले का 'राजा हरिश्चन्द्र' पुकारना एक मुहावरा बन गया है। राजा हरिश्चन्द्र अयोध्या के अत्यन्त न्यायप्रिय और सत्यवादी राजा थे। उनकी महारानी तारामती और पुत्र रोहिताश्व थे। कहीं कहीं तारामती का नाम शैब्या भी बताया जाता है। ये दोनों भी महाराज हरिश्चन्द्र के अच्छे कामों में पूरी तरह सहयोग करते थे। एक बार ऋषि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा की परीक्षा लेने का विचार किया। उन्होंने महाराज को अपने योग बल से स्वप्न दिया और सपने में उनका सारा साम्राज्य दान में माँग लिया।

प्रातः महाराज उठे और अपने परिवार से सपने में अयोध्या का साम्राज्य महर्षि विश्वामित्र को दान देने की बात बताई। सपने में भी दिया गया वचन झूठा नहीं होना चाहिए ऐसा निश्चय कर अपना सारा साम्राज्य ऋषि विश्वामित्र को सौंप कर वे पत्नी व पुत्र को लेकर वन में चले गए।

अत्यन्त कठोर परीक्षा देकर ही कोई महान बनता है। हरिश्चन्द्र जी की परीक्षा तो मानो अभी आरंभ ही हुई थी। शास्त्र कहते हैं दान के साथ यदि दक्षिणा न दी जाए तो दान पूरा नहीं होता। ऋषि विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र जी से दक्षिणा माँग ली। वे तो अपना सब कुछ दान दे चुके थे। उनके पास एक कौड़ी भी न थी। लेकिन

ऋषि अपनी दक्षिणा की माँग पर अड़े रहे। आप यह न समझिए की विश्वामित्र जी बड़े दुष्ट थे वरन् वे तो ऐसी कठिन परीक्षा लेकर हरिश्चन्द्र जी को संसार के महानतम राजाओं में गिने जाने योग्य बनाना चाहते थे, फिर भी ऊपरी तौर पर तो यह कठोरतम परीक्षा ही थी।

हरिश्चन्द्र जी ने सोचा अभी भी मेरा शरीर तो मेरा है, मेरा परिवार भी मेरा है ही। यह कथा उस समय की है जब धनी लोग धन के बदले दासों को खरीदा करते थे। हरिश्चन्द्र जी ने स्वयं को बेचने के लिए बोली लगाई। 'यह तो राजा रहा है क्या काम करेगा?' ऐसा सोचकर उन्हें किसी ने नहीं खरीदा, तब वहाँ के डोम राजा जो श्मशान में शवों को जलाने की व्यवस्था देखते थे, वे आगे बढ़े और पाँच सौ स्वर्ण मुद्राओं में हरिश्चन्द्र को खरीद लिया। दक्षिणा में तो एक हजार मुद्रा देना थी। विवश होकर अपनी पत्नी को भी एक दयालु सज्जन को उनके घरेलू काम-काज के लिए बेच दिया। छोटा-सा बेटा रोहिताश्व माता-पिता के बिना कैसे रहता? प्रार्थना करने पर उन सज्जन ने उसे भी दासी बन चुकी महारानी के साथ रहने की अनुमति दे दी। इस प्रकार ऋषि विश्वामित्र को दक्षिणा भी दे दी गई।

आपत्ति वीर पुरुषों की कसौटी होती है। महलों में महाराजा का जीवन जीनेवाला परिवार अब दास बन चुका था। हरिश्चन्द्र जी अब श्मशान में शवदाह के लिए आने वाले लोगों से निश्चित शुल्क लेने का काम करते, श्मशान में ही दिन-रात बिताते और तारामती अपने स्वामी के यहाँ घर के सारे काम करती। बेटा रोहिताश्व भी बड़े प्रेम से पूजा के फूल लाना,

पूजा घर की सफाई और छोटे–छोटे काम करता।

एक दिन फूल लेने गए रोहिताश्व को सांप ने डस लिया। तारामती उसके शव को लिए श्मशान पहुँची। हरिश्चन्द्र जी अपने पुत्र व पत्नी की दशा देखकर विव्हल हो उठे पर 'बिना शुल्क लिए शव न जलाने देना' यह उनके स्वामी का आदेश था। तारामती के पास देने को था ही क्या? वे तो पुत्र के शव को भी अपनी फटी–पुरानी, मैली साड़ी से ढाँक कर लाई थीं।

''अपनी आधी साड़ी ही शुल्क रूप में दे दो।'' हरिश्चन्द्र जी ने मुँह फेर कर कह ही डाला। तारामती ऐसा करने को तैयार हुई।

तभी साक्षात् धर्मराज जो डोमराजा बने थे और ऋषि विश्वामित्र वहाँ आ गए। साक्षात् विष्णु भगवान और देवगण प्रकट हो गए। हरिश्चन्द्र की परीक्षा पूर्ण हो चुकी थी। ''राजन्! आपकी परीक्षा पूरी हुई। आपकी सत्यवादिता और कर्त्तव्य निष्ठा युगों–युगों तक आदर्श बनी रहेगी।''

ऋषि विश्वामित्र तो तपस्वी थे उन्हें राज्य का लोभ नहीं था। हरिश्चन्द्र जी को पुन: अयोध्या का सम्राट बना दिया। पुत्र रोहिताश्व को भगवान ने पुन: जीवित कर दिया।

ऐसे महान थे राजा हरिश्चन्द्र। आधुनिक युग में भी महात्मा गांधी के बचपन में सत्य निष्ठा की प्रेरणा उनकी इस कथा को नाटक रूप में देखकर ही जगी थी।

बच्चो! आप भी सत्य का व्रत अपनाइए क्योंकि सत्य ही परमात्मा का रूप है और समस्त धर्मों का मूल भी।

विनम्र निवेदन

बच्चो! इस अंक के पृष्ठ दो पर दी गई रघुवंश की वंशावली स्वामी ब्रह्मयोगानन्द जी के शोधपूर्ण ग्रंथ **सम्पूर्ण भारतम् परम वैभव भारतम्** में दी गई सूची के अनुसार हैं।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड के दसवें सर्ग में महर्षि वाल्मीकि ने भगवान श्रीराम की वंशावली इस प्रकार दी है– आकाशरूप परमात्मा, ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान्, इक्ष्वाकु, कुक्षि, विकुक्षि, बाण, अनरण्य, पृथु, त्रिशंकु, धुंधुमार, युवनाश्व, मान्धाता, सुसंधि, उनके पुत्र ध्रुवसंधि व प्रसेनजित्, ध्रुवसंधि के पुत्र भरत, असित, सगर, असमञ्ज अंशुमान, दिलीप, भगीरथ, ककुस्थ, रघु, कल्माषपाद, शंखण, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग, मरु, प्रशुश्रुष, अम्बरीष, नहुष, नाभाग उनके पुत्र अज व सुव्रत, अज के पुत्र दशरथ उनके पुत्र श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न। तथापि इस अंक में संकलित कथाएँ विभिन्न ग्रंथों से ली गईं हैं। अत: युगों पूर्व के इस इतिहास की सुनिश्चतता के फेर में न पड़ते हुए हमें इन कथाओं की मूल शिक्षाओं और संदेशों को ग्रहण करना चाहिए। – **सम्पादक**

आयुर्वेद से बचे सगर के प्राण

सच्चाई जाने बिना, दो न किसी को दोष।
सर्वनाश का ही कुफल, निर्दोषी का रोष।।

महाराज हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व की अगली पीढ़ियों में असित का जन्म हुआ। धीरे-धीरे पृथ्वी के अन्य राजाओं में परस्पर मनमुटाव बढ़ता जा रहा था। असित बहुत सात्विक, सज्जन व शांति प्रिय थे। वे अपनी दोनों पत्नियों के साथ वन चले गए। उनकी पत्नी कालिन्दी ने एक दिन आनंददायक समाचार सुनाया- ''महाराज! आप पिता बनने वाले हैं। सूर्यवंश को एक और उत्तराधिकारी मिलने वाला है।'' असित प्रसन्न हुए। दूसरी रानी को ईर्ष्या हुई- ''ऊँह! कालिन्दी का बेटा राजा होगा तो मेरा तो मान कम हो जाएगा।'' उसने कालिन्दी को विष दे दिया। वहीं तपोवन में मुनिवर और्द के आश्रम में आयुर्वेद के महान शोध-अनुसंधान चल रहे थे। मुनि ने कुछ ऐसा आयुर्वेदिक उपचार किया कि गर्भस्थ बालक को विष नष्ट न कर सका पर विष भी नष्ट नहीं हुआ। तब बालक विष सहित ही जन्मा। विष को 'गर' भी कहते हैं अत: उसका नाम 'सगर' हुआ। ऋषि कुल ने ही सगर को दिव्यास्त्रों की शिक्षा दी।

कालान्तर में सगर ने अश्वमेघ यज्ञ किए। देवताओं के राजा इन्द्र को सगर का बढ़ता प्रभाव सहन नहीं हुआ। उन्होंने अश्वमेघ यज्ञ का वह घोड़ा जिसकी रक्षा सगर के ६० हजार पुत्र कर रहे थे वह चुरा लिया, पर डरकर स्वर्ग न ले जाकर, सांख्य दर्शन के प्रणेता तपस्यारत महामुनि कपिल के आश्रम में बाँध दिया। सोचा होगा कि मुनि के आश्रम में कोई यह घोड़ा ढूँढ़ने क्यों आएगा और घोड़ा मिले बिना तो यज्ञ अधूरा ही रहेगा। लेकिन सगर के पुत्रों ने उसे खोज ही लिया।

सगर पुत्रों के घोड़ा देखकर शोर मचाने से मुनि की समाधि भंग हो गई। अपनी तपस्या भंग से क्रोधित मुनि ने जैसे ही आँखें खोलीं उनकी क्रोध की अग्नि में सारे सगर पुत्र भस्म में हो गए।

सगर को समाचार मिला तो उसने अपने भतीजे असमंजस के पुत्र अंशुमान को यज्ञ के घोड़े को ढूँढ़ने भेजा और कहा– ''अपने धनुषबाण लेते जाओ। मार्ग में सज्जन मिलें तो उनका सत्कार करना और दुष्ट मिलें तो उनका संहार करते जाना।''

वह अपने चाचाओं को जलांजलि देकर महामुनि कपिल को संतुष्ट कर घोड़ा लिए लौटा तो मार्ग में गरुड़ ने उनसे कहा– ''इन साठ हजार सगर पुत्रों की मुक्ति गंगाजल से ही होगी।'' उस समय गंगा पृथ्वी पर नहीं बहती थी।

अंशुमान ने दादा जी सगर को अश्व लौटा कर यज्ञ पूर्ण करवाया और 'गंगा के बिना मुक्ति' नहीं की बात बताई। गंगा को लाने का प्रयास सगर से आरंभ हुआ और अगली पीढ़ियों तक चलता रहा चलता रहा।

पुराणों में कथा आती है कि सगर के समय से गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने का प्रयत्न पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। चूँकि इसमें केवल सगर के पुत्रों का ही कल्याण नहीं था वरन् सारी सृष्टि के लिए यह एक अलभ्य उपलब्धि थी। किसी एक महान ध्येय के लिए पीढ़ियों तक प्रयत्नों का यह अनूठा उदाहरण है।

महान गौ भक्त राजा दिलीप

आदरणीय और पूज्य जो, टले न उनका मान।
भूल जो हो उसके लिए, प्रायश्चित विधान।।

अयोध्या के महान सम्राटों में भगवान श्रीराम के पूर्वज महाराज दिलीप बहुत प्रख्यात हैं। इनका एक नाम खद्‌वांग भी था। संसार के महान गौभक्तों में महाराज दिलीप का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है।

अत्यन्त पराक्रमी महाराज दिलीप को कोई संतान न थी। वे अपनी यह चिंता लेकर अपने कुलगुरु वसिष्ठ जी के सम्मुख उपस्थित हुए। वे अपनी महारानी मगधकुमारी सुदक्षिणा के साथ गुरुदेव को प्रणाम कर बोले– ''गुरुवर! मुझसे ऐसा कौन–सा अपराध हुआ है जो मुझे कोई सन्तान प्राप्त नहीं हुई? क्या मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे राज्य का कोई भी उत्तराधिकारी न होगा? क्या मुझे मृत्यु के बाद पिण्डदान, तर्पण आदि करने वाला, मेरा श्राद्ध करने वाला, भी कोई न होगा?''

महर्षि वसिष्ठ ने ध्यान लगाकर सब कुछ जान लिया वे बोले– ''राजन्! जब आप देवताओं की युद्ध में सहायता करके लौट रहे थे तब मार्ग में एक वृक्ष के नीचे खड़ी अनेक गायों से घिरी कामधेनु को आपने प्रणाम नहीं किया। आप तो जानते हैं कि जहाँ कहीं भी कोई गौमाता दिखाई दे उसे प्रणाम अवश्य करना चाहिए। इसी अपराध के कारण आप निस्संतान हैं?''

राजा को अपनी भूल अनुभव हुई वे विनयपूर्वक बोले– ''क्या अनजाने में हुआ अपराध भी क्षमायोग्य नहीं है? गुरुदेव! आप इस अपराध का जो प्रायश्चित बताएँ मैं करने को तैयार हूँ।'' पहले तो कोई अपराध ही न करना पर किसी कारण कोई अपराध हो ही जाए तो अपने अपराध के लिए विनम्रता से क्षमा माँग लेना महान लोगों का लक्षण है।

वसिष्ठ जी ने कहा– ''गौवंश का अपमान हुआ है इसलिए प्रायश्चित भी गौ–सेवा ही हो सकती है। मेरे आश्रम में कामधेनु की सन्तान नन्दिनी है। आप दोनों पति पत्नी पूरी निष्ठा से इसकी अखण्ड सेवा करें, इससे आपको अवश्य ही एक प्रतापी पुत्र की प्राप्ति होगी।''

केवल शाम को एक बार गाय के दूध का ही आहार लेते हुए अपना सारा राज्यकार्य योग्य मंत्रियों को सम्हलाकर राजा दिलीप अपनी पत्नी सहित नंदिनी गौ की सेवा करने लगे। वह अपनी इच्छा से जहाँ-जहाँ जाती धनुष बाण धारण कर राजा-रानी भी उसके साथ-साथ ही रहते।

एक दिन एक घने जंगल में एक सिंह ने नंदिनी पर आक्रमण कर दिया। राजा ने वनराज को गाय को छोड़ देने को कहा। सिंह बोला- ''आप तो सूर्यवंश के महान वंशज हैं। गाय मेरा भोजन है। मेरे भोजन से वंचित कर आप मेरे प्रति अन्याय करेंगे?''

राजा दिलीप ने सिंह को अन्य आहार उपलब्ध कराने का प्रस्ताव दिया लेकिन सिंह ने कहा- ''आप अपने व्रत की पूर्ति व गुरु की प्रसन्नता के लिए, इस एक जीव को बचाकर दूसरे निरपराध प्राणी को मेरा भोजन बनाएँ यह अधर्म नहीं होगा?''

तब राजा दिलीप ने कहा- ''वनराज! आप सही कह रहे हैं लेकिन माता नंदिनी की रक्षा मेरा कर्त्तव्य है। आप इसके बदले मुझे अपना भोजन बना लें।'' वे धनुषबाण छोड़ गौमाता को प्रणाम करके सिंह के सम्मुख शीश झुकाए बैठ गए।

सिंह ने नंदिनी को छोड़कर उन पर आक्रमण के लिए छलाँग भरी पर घोर आश्चर्य सिंह हवा में ही अदृश्य हो गया। नंदिनी बोली- ''राजन्! मैं आपकी गौभक्ति और सेवा से बहुत सन्तुष्ट हूँ। जो अपने प्राण देकर भी गाय के प्राण बचाने का प्रयत्न करे वह तो महान धर्मात्मा ही होता है ऐसे पुण्यात्मा गौभक्त का वंश चलना ही चाहिए। जाओ मेरी कृपा से तुम्हें एक परमवीर पुत्र की प्राप्ति होगी।''

वे अयोध्या लौट आए। समयानुसार उन्हें महान यशस्वी 'भगीरथ' नामक पुत्र प्राप्त हुआ।

अनथक प्रयासी भगीरथ

जब तक मिले न सफलता, अनथक करें प्रयास।
लगे रहे तो एक दिन, पूरी होगी आस।।

गौभक्त महाराज दिलीप के पुत्र अयोध्या नरेश महाराज भगीरथ का नाम कौन नहीं जानता? इस पृथ्वी पर सबसे पवित्र, गंगा नदी को लाने का उनका प्रयत्न इतना कठिन कार्य था कि लोग आज भी कठिन प्रयत्नों को 'भगीरथ प्रयास' कहते हैं।

महामुनि कपिल के शाप से महाराज सगर के ६० हजार पुत्र राख की ढेरी बन चुके थे। इनके उद्धार का एक ही मार्ग था 'इस राख को गंगा में प्रवाहित किया जाए।' गंगा तो भगवान विष्णु के पैरों के नख से निकली और ब्रह्माजी के कमण्डलु में समा गई। वह देवताओं की नदी, स्वर्ग में बहती है वह भला धरती पर कैसे आएगी? सगर से लेकर अभी तक अनेक पूर्वज इसी प्रयत्न में रहे पर असफलता ही मिली।

उत्तम व्यक्ति वे ही होते हैं जो कठिन से कठिन कार्य को भी करने का प्रयत्न करते हैं और सफलता पाने तक उसे छोड़ते नहीं।

राजा भगीरथ ने भी यह असंभव कार्य संभव बनाने के लिए घोर तपस्या आरंभ की। ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए।

उन्होंने भगीरथ से वर माँगने को कहा। भगीरथ को अपने लिए कहाँ कुछ माँगना था? अपने पूर्वजों के मोक्ष के लिए उन्होंने गंगा को धरती पर भेजने का वर माँगा।

ब्रह्मा बोले– ''वत्स! गंगा का वेग इतना प्रचण्ड है कि मैंने स्वर्ग से इसे नीचे भेजा तो यह सीधी पाताल तक चली जाएगी। तब भी तुम्हारा उद्देश्य तो पूरा नहीं होगा अत: इसे धरती पर रोकेगा कौन?''

भगीरथ सोच में पड़ गए तो ब्रह्मदेव ने सुझाया तुम कैलासवासी भगवान शिव की तपस्या करो वे ही हैं जो इस प्रचण्ड प्रवाहमती गंगा को धरती पर रोक सकते हैं।''

भगीरथ ने शिवजी की कठोर तपस्या की। वे शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले आशुतोष शिवजी

भगीरथ के परोपकारी उद्देश्य को जानकर अपनी विशाल जटाएँ खोलकर गंगा को धारण करने खड़े हो गए। भयंकर गड़गड़ाहट के साथ गंगा धरती पर उतरी और शिवजी ने अपने जटाजूट में उसे बाँध लिया।

अब ? आकाश से उतरी तो शिव की जटा में समा गई। गंगा, सगर–पुत्रों की राख तक तो पहुँची नहीं। भगीरथ ने पुनः तपस्या की शिवशंकर से प्रार्थना की। गंगाधर शिव ने प्रसन्न होकर एक जटा खोल दी गंगा की धारा भगीरथ के साथ उनके पीछे–पीछे बहते हुए बढ़ने लगी। केवल सगर पुत्रों तक ही क्यों सारे भारत–वासियों को युगों–युगों तक गंगा की पवित्रता का लाभ मिले यह सोचकर हिमालय से पूरे मध्य भाग तक होकर भगीरथ चलते रहे। गंगा अपने किनारों पर अनेक तीर्थों को बनाती बहती रही। मार्ग में जन्हु ऋषि का आश्रम आ गया। अपना आश्रम डूबते देख ऋषि ने गंगा को पी लिया। भगीरथ ने प्रार्थनापूर्वक ऋषि से सबके भले के लिए सहायता माँगी। दयालु ऋषि ने गंगा अपनी जंघा से पुनः प्रवाहित की। इससे गंगा का नाम 'जान्हवी' भी हो गया। मकर संक्रांति के दिन कपिल मुनि के आश्रम तक पहुँचकर गंगा, सागर में जा मिली वहीं सगर के पुत्रों का उद्धार हुआ और उस तीर्थ का नाम गंगासागर हुआ।

यह सब श्रीराम के पूर्वज भगीरथ के प्रयासों से हुआ। इसलिए शिव की जटा में समाने से 'जटाशंकरी' कहलाने वाली गंगा का एक नाम 'भागीरथी' भी पड़ गया।

गंगा शिव की जटा से प्रकटी वह तिथि ज्येष्ठ शुक्ल दशमी थी जो गंगादशहरा के नाम से आज भी भारत का एक प्रसिद्ध त्योहार है।

पितृभक्त नाभाग

भगीरथ की चौथी पीढ़ी में राजा नाभाग हुए। सूर्यवंशी राजाओं की श्रेष्ठ परम्परा में एक और नररत्न। वे गुरुकुल से अपनी पढ़ाई करके लौटे तो पता चला कि पिता की सारी सम्पत्ति तो बड़े भाइयों ने बाँट ली और नाभाग को कह दिया– ''तुम्हारे हिस्से में केवल पिता जी हैं।'' पिता ने समझाया– ''नाभाग बेटे! चिंता मत करो। धर्म के अनुसार आचरण करो धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा।''

पास ही यज्ञ चल रहा था। पिता ने आज्ञा दी। ''तुम भी इन ऋषियों के साथ यज्ञ करो। ये ऋषिगण तुम्हें उचित भाग प्रदान करेंगे।''

नाभाग ऋषियों के साथ यज्ञ में सम्मिलित हो गया। उसके मुख से भी मंत्रोच्चार होने लगा। यज्ञ सम्पन्न हुआ। ऋषियों ने कहा– ''यज्ञ करते समय जो शेष भाग (सामग्री) बची है वह तुम ले सकते हो।''

नाभाग सामग्री लेता तभी रुद्र का एक गण आया और कहा– ''शास्त्र की मर्यादा है यज्ञ का बचा भाग रुद्र अर्थात् शिव का है। अत: यह मुझे दे दो।''

प्रकरण नाभाग के पिता के पास पहुँचा। वे सूर्यवंशी न्यायी राजा थे। रुद्र के दूत की बात सही सिद्ध हुई। पुत्र से वह यज्ञ का भाग रुद्र–दूत को दिलवा दिया। न्याय के आगे अभावग्रस्त पुत्र का पक्ष न लेने वाले इस सूर्यवंशी राजा को प्रणाम है।

लेकिन कालान्तर में नाभाग अपने पुरुषार्थ से यशस्वी हुए। उन्हें धर्माचरण के फलस्वरूप एक महान भगवद्भक्त पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम था अम्बरीष।

धन संपद् से भी अधिक,
मात–पिता अनमोल।
उनके आशीर्वाद से,
सुयश सुभाग अतौल।।

अतिथि सेवक भक्त अम्बरीष

सेवा अतिथि के भाग्य से, मिलती है सुखधाम।
अतिथि स्वयं भगवानवत्, पूजनीय शुभकाम।।

नाभाग के पुत्र अम्बरीष के बारे में पुराणों में प्रशंसा आती है कि जिस ब्रह्मशाप से कोई भी नहीं बचता वह भी अम्बरीष को नहीं छू पाया। रामचरितमानस में गोस्वामी जी लिखते हैं।

इन्द्रकुलिश मम शूल विशाला,
ब्रह्मदण्ड हरिचक्र कराला।
जो इन्हकर मारे नहीं मरहीं,
विप्र शाप पावक सो जरहीं।।

अर्थात् इन्द्र के वज्र, मेरे (शिव के) त्रिशूल, ब्रह्मास्त्र और श्री हरि के चक्र से भी जो न मरे वह सच्चे ब्राह्मण के शाप से जल जाता है।

अम्बरीष एकमात्र ऐसे महात्मा राजा हुए जिन्होंने भगवान श्रीहरि के सुदर्शनचक्र को भी लौटा दिया था।

एक बार भक्तराज अम्बरीष ने एकादशी का व्रत किया। व्रत के बाद द्वादशी में व्रत न खोलने पर एकादशी व्रत पूर्ण नहीं होता और अम्बरीष यह व्रत अखंड रूप से करते थे। व्रत के दिन नियमानुसार अन्न त्यागकर वे यज्ञादि पुण्य कार्यों में लगे थे। व्रत समाप्ति के समय महान क्रोधी माने जाने वाले तपस्वी ऋषि दुर्वासा आ गए।

द्वार पर आगत अतिथि की अनदेखी तो अम्बरीष स्वप्न में भी न करते थे। उन्होंने विधिवत स्वागत कर ऋषिवर को भोजन का आमंत्रण दिया। ऋषि ने उसे स्वीकार किया और स्नान एवं सन्ध्या वंदन हेतु नदी के तट पर जा पहुँचे।

इधर द्वादशी तिथि समाप्त होने को थी उधर ऋषि दुर्वासा लौटने में विलम्ब कर रहे थे। अब बड़ा धर्म संकट उपस्थित हुआ। आमंत्रित अतिथि को भोजन करवाए बगैर राजा अन्न कैसे ग्रहण करे और अन्न ग्रहण न करें तो व्रत अधूरा रहे। जीवनभर का नियम टूटे। पुरोहितों ने मार्ग सुझाया– ''राजन्! मात्र कुछ ही पल में व्रत का पारणा (भोजन) न किया तो व्रत भंग हो

जाएगा। क्योंकि द्वादशी तिथि समाप्ति को है अत: आप भगवान श्री हरि का चरणामृत ग्रहण कर व्रत खोल लें। इससे अतिथि सत्कार की मर्यादा भी बचेगी और व्रत भी पूरा हो जाएगा।'' राजा अम्बरीष ने ऐसा ही किया।

इधर बहुत देर से दुर्वासा लौटे तो राजा का मुख देखकर पहचान गए– ''राजन्! यह क्या तुमने मुझ आमंत्रित को छोड़कर स्वयं पहले ही व्रत पूर्ण कर लिया। यह मेरा अपमान है और अतिथि धर्म का उल्लंघन।''

राजा ने क्षमा माँगी पर ऋषि का क्रोध शांत न हुआ। उन्होंने एक कृत्या उत्पन्न की। कृत्या मंत्र बल से उत्पन्न एक भयानक स्त्री होती है। जो साक्षात् मृत्यु के समान होती है। वह कृत्या अम्बरीष का नाश करने दौड़ी तो श्रीहरि नारायण निरपराध भक्त के प्राण संकट में देख क्रोधित हो गए। श्री विष्णु ने अपने सुदर्शन से उस कृत्या को नष्ट कर दिया। अब वह सुदर्शन दुर्वासा की ओर बढ़ा। दुर्वासा भयभीत हो गए सोचने लगे निश्चय ही मैंने क्रोध में अनुचित काम कर डाला है। वे सुदर्शन के भय से शिवशंकर की शरण में गए शिवजी ने सुदर्शन से रक्षा में असमर्थता बताई। वे ब्रह्माजी के पास गए वे भी न बचा पाए। तब वे श्रीहरि नारायण के पास गए।

''प्रभु! क्षमा करें। अपना सुदर्शन लौटाएँ।'' श्रीनारायण बोले– ''इससे तो अब वही बचा सकता है जिस निर्दोष का आपने अपराध किया है।''

दुर्वासा राजा अम्बरीष के पास आए और हाथ जोड़कर अपने क्रोध के लिए क्षमा माँगने को तैयार हुए। अम्बरीष ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

''आप मेरे आदरणीय हैं क्षमा माँग कर लज्जित न करें।''

''फिर मेरी प्राण रक्षा?'' ऋषि घबराए।

अम्बरीष ने सुदर्शन से हाथ जोड़कर कहा– ''यदि मैंने वास्तव में कोई पाप न किया हो तो आप जहाँ से आए हैं वहीं श्रीहरि के पास लौट जाएँ।''

और संसार में पहली बार सुदर्शन के लौट जाने का अद्भुत अवसर घटित हो गया।

ऐसे महान भगवद्भक्त और अतिथि सेवक राजा थे अम्बरीष, राजा होकर भी ऋषि जैसे पवित्र।

महादानी राजा रघु

दान महा सत्कर्म है, याचक मिले सुयोग।
दानी का यश अमर है, धन का सद्उपयोग।।

विजया दशमी अर्थात् दशहरे पर एक परम्परा कई स्थानों पर है। रावण का पुतला दहन करने के बाद परस्पर सोना पत्ती (शमी के वृक्ष के पत्ते) सोना मानकर दी जाती हैं। क्या आप यह जानते हैं कि यह सोना बाँटने की कौन-सी परम्परा है? यह सोना, जिसके प्रतीकरूप सोनापत्ती बाँटी जाती हैं वह लंका से जीतकर या लूटकर नहीं लाया गया था। भगवान राम ने जब लंका विजय की तो वे सोने की लंका से रत्तीभर सोना भी नहीं लाए थे। फिर यह परम्परा क्या है?

भगवान श्रीराम के पूर्वजों में ही अयोध्या के एक और महान राजा हुए हैं महाराज रघु। इन्हीं के नाम पर राम का वंश रघुवंश कहलाया और श्रीराम का एक नाम हुआ 'राघव'। महाराज रघु की वीरता की अनेक कथाएँ हैं। एक कथा ऐसी है कि एक बार समस्त दिशाओं में अपनी विजयपताका फहराकर दिग्विजय करने के बाद महाराज रघु ने एक विश्वजित नामक महान यज्ञ किया और अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रजा के उन लोगों में बाँट दी जिन्हें उनकी आवश्यकता थी। उनके पास प्रतिदिन भोजन हेतु भी मात्र मिट्टी के पात्र ही बचे।

उसी समय महर्षि वरतन्तु के गुरुकुल में एक अनूठी घटना घटी। महर्षि का एक अत्यन्त सुयोग्य शिष्य कोत्स अपनी शिक्षा पूरी होने पर गुरुजी के सामने खड़ा था- ''गुरुदेव! आपकी कृपा से मैंने अपना विद्याध्ययन पूरा किया है अब मैं इस विद्या का उपयोग अपने समाज और मानवता की सेवा के लिए करूँगा। लेकिन आश्रम से विदा लेने के पूर्व मेरी आकांक्षा है कि आप मुझसे कुछ गुरुदक्षिणा स्वीकार करें।''

शिष्य के श्रद्धामय वचनों को सुनकर गुरु गद्गद हो उठे- ''वत्स कोत्स! मुझसे प्राप्त ज्ञान को अपने स्वाध्याय और अनुसंधान से आगे बढ़ाते हुए लोक कल्याण के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ाते रहो, यही मेरी गुरुदक्षिणा है।'' वे जानते थे यह ब्रह्मचारी शिष्य

किसी भी आर्थिक दृष्टि से असमर्थ है।

कोत्स ने बार–बार आग्रह किया तो उसकी हठ देखकर गुरु क्रोधित हो उठे और कहा– ''ठीक है मैंने तुम्हें चौदह विद्याएँ सिखाई हैं अतः चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ मेरी दक्षिणा के रूप में प्रस्तुत करो।''

''जो आज्ञा गुरुदेव!'' कहकर कोत्स चल पड़ा, अपनी प्रजा की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करने वाले अयोध्या नरेश महाराज रघु के पास। लेकिन रघु तो स्वयं अब मिट्टी के पात्रों में भोजन करते थे। अब उनके पास धन था कहाँ ?

लेकिन अयोध्या नरेश के द्वार से कोई याचक कभी निराश नहीं जा सकता। कोत्स को रात्रि विश्राम करने का कहकर महाराज ने देवताओं के धनाध्यक्ष कुबेर पर चढ़ाई करने की घोषणा कर दी।

कुबेर महाराज रघु की वीरता से परिचित थे अतः उनसे युद्ध करने की अपेक्षा उसने इस चढ़ाई का उद्देश्य पता किया और रातोंरात अयोध्या के राजकोष को स्वर्ण–मुद्राओं की वर्षा करके भर दिया। अब आक्रमण का कोई कारण न बचा था।

महाराज रघु ने कोत्स को बुलाकर यह सारी स्वर्णमुद्राएँ ले जाने को कहा। और कोई होता तो सारा धन ले जाकर गुरुजी की, दक्षिणा चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ देता और बाकी धन अपने पास रख लेता। लेकिन कोत्स चौदह करोड़ मुद्राओं से एक मुद्रा भी अधिक लेना नहीं चाहता था और रघु यह धन कोत्स के लिए आया है, इसलिए रखना नहीं चाहते थे।

अन्ततः महाराज रघु ने बची हुई स्वर्णमुद्राएँ एक शमी के वृक्ष के नीचे बैठकर अपनी प्रजा को बाँट दी। वह आश्विन शुक्ल दशमी अर्थात् विजया दशमी का दिन था। तब से विजयादशमी पर शमी की पत्तियाँ सोना मानकर परस्पर बाँटने की परम्परा बन गई। ऐसे महान प्रतापी और महादानी थे महाराज रघु।

अम्बरीष के पुत्र खट्वांग (दिलीप द्वितीय) उनके दीर्घबाहु और उनके पुत्र थे राजा रघु। यद्यपि कालिदास ने अपने महान ग्रंथ रघुंशम् में इन्हें खट्वांग का पुत्र बताया है।

साहसी महाराज अज

साहस सद्गुण है प्रमुख, वीर-पुरुष-पहचान।
शौर्य-सखा, रक्षा कवच, साहस धैर्य-प्रधान।।

भगवान श्रीराम के पिता महाराज दशरथ थे यह तो सब जानते हैं लेकिन उनके दादा जी का नाम कम लोगों को पता है। वे थे महाराज अज।

सूर्यवंशी राजाओं की परम्परा में शक्ति, शौर्य, पराक्रम, ओज एवं कर्तव्यनिष्ठा में महाराज अज भी अतुलनीय ही थे। पृथ्वी के लगभग सभी प्रमुख राजवंश अयोध्या नरेश के संबंधी बनने को आतुर रहते थे। अयोध्या के राजकुमारों के लिए दूर-दूर से विवाह संबंधों के प्रस्ताव आते रहते थे। अज तो वैसे भी असाधारण शौर्य और सुंदरता के धनी थे। उस युग में राजकुमारियों को भी अपने योग्य पति चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता होती थी। इस हेतु राजाओं द्वारा अपनी पुत्री के लिए स्वयंवर आयोजित किए जाते थे। जिसमें भिन्न-भिन्न देशों के राजकुमार और राजागण आमंत्रित किए जाते थे। इस प्रकार के स्वयंवरों में सहभागिता करना राजकुमारों के लिए भी अत्यंत गौरव का विषय हुआ करता था। राजकुमारी उपस्थित अभ्यर्थियों में से अपने अनुकूल वर का चयन करती थीं। कई बार स्वयंवर विशिष्ट नियमों से भी प्रतिबंधित रहते थे।

अपने इस अत्यन्त सुन्दर, सुशील युवा पुत्र के लिए पिता रघु ने विदर्भ के राजा भोज के द्वारा अपनी रूपवान बेटी के स्वयंवर के लिए भेजा आमंत्रण स्वीकारा। अयोध्यापुरी हर्ष विभोर हो उठी। उनको एक सुंदर सुशील राजवधू प्राप्त होने वाली थी क्योंकि उनके राजकुमार अज स्वयंवर तो जीतेगें ही इसमें किसी को जरा भी संशय नहीं था।

पिता की आज्ञा से कुछ चतुर मंत्रियों व चयनित सेना के साथ अज स्वयंवर के लिए चले। मार्ग में एक दुर्घटना उपस्थित हो गई। जिस सरोवर के किनारे इनकी सेना मार्ग में विश्राम के लिए ठहरी थी। उसमें एक बलशाली

हाथी नहा रहा था। सेना की हलचल से वह बिगड़ गया और सेना को कुचलने पागलों की तरह दौड़ पड़ा। सेना विश्राम कर रही थी अचानक आक्रमण से घबरा कर भागने लगी। राजकुमार अज ने इस दशा में एक ही बाण से हाथी का आक्रमण विफल कर दिखाया। इस साहस से प्रसन्न उस वन के स्वामी गन्धर्व ने उन्हें 'सम्मोहन अस्त्र' प्रदान किया।

विदर्भ की धरा पर अंग, बंग, कलिंग, अवन्ती आदि अनेक राजकुलों के प्रत्याशी राजकुमार उपस्थित थे। अज को देखते ही उसके रूप, गुण, शील और पराक्रम से मोहित राजकुमारी इन्दुमती ने अज के गले में वरमाला डाल दी। शेष प्रत्याशी क्रोध में भरकर अज पर आक्रमण को दौड़े। अज ने अपनी पत्नी बन चुकी इन्दुमती को मंत्रियों की रक्षा में देकर अकेले ही सारे राजा-राजकुमारों को परास्त कर दिया।

अयोध्या ने नव वर-वधु का हृदयपूर्वक अपूर्व स्वागत किया। अपने योग्य पुत्र को अयोध्या का सिंहासन सौंप कर महाराज रघु वानप्रस्थी हो गए। सत्संग भजन एवं दीन दुखियों की सेवा सहायता में अनेक वर्षों बाद दिवंगत हुए।

इन्हीं महाराज अज और महारानी इन्दुमती की संतान हुए दशरथ।

मनु-शतरूपा ही दशरथ-कौसल्या

सावधान होकर करें, शक्ति-प्रयोग सचेत।
हानि न हो निर्दोष की, सुधिजन का संकेत।।

रघुकुल में राजा तो अनेक हुए पर भगवान को अपना पुत्र बनाकर गोद में खिलाने का सौभाग्य तो अयोध्याधीश महाराज दशरथ को ही मिला।

हिन्दू धर्म की प्रमुख मान्यताओं में एक है पुनर्जन्म का सिद्धांत। मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कामों के फल बार-बार जन्म लेकर भोगता है। कर्म का फल बिना भोगे नष्ट नहीं होता, इसलिए वर्तमान जन्म में जो किया जा रहा है, वह इसी जन्म में समाप्त नहीं होगा, अगले जन्मों तक भोगना ही होगा। अत: सदैव अच्छे काम करें। आज कई बुरे काम करने वाले भी सुखी दिखते इससे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। उनका सुख वैभव किसी पिछले जन्म के अच्छे काम का फल है, वह भोग समाप्त होते ही दु:ख आने वाला है।

भगवान श्रीरामचन्द्र के पिता होने का अतुलनीय सुख जिन महाराजा दशरथ को मिला उनके सम्बन्ध में जानना हो तो उनके इस जन्म के पूर्व की कथा को भी जानना चाहिए।

पूर्व मन्वन्तर में स्वायंभुव मनु नामक महापुरुष ने अपनी धर्मपत्नी महारानी शतरूपा के साथ धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन किया। उनकी प्रजा अपार आनंद से अपने-अपने कर्त्तव्य-कर्म का पालन कर जीवन जी रही थी। अनेकानेक वर्ष यों ही चलता रहा एक दिन राजा ने विचारा- ''इस लोक के समस्त श्रेष्ठ फल प्राप्त कर अनेक वर्ष बिताए, अब उस लोक के लिए भी कुछ विशेष साधन करना चाहिए। अत: अत्यन्त आग्रहपूर्वक अपने पुत्र को प्रजा की रक्षा एवं पालन हेतु राज्य सौंपकर पत्नी सहित वे गहन वन में कठोर तपस्या करने लगे।

पवित्र गौतमी नदी के तट पर नैमिषारण्य में वे अब मुनियों जैसे वस्त्र पहनते अत्यन्त अल्प कंदमूल-फल का सेवन कर दिन-रात

प्रभु स्मरण और कथा–कीर्तन में रत रहते।

कुछ ही समय पश्चात् वे निरंतर अपनी तपस्या कठोर से कठोरतम करते गए। पहले फल–फूल लेना भी छोड़ा फिर जल और अन्ततः केवल हवा लेकर तपस्या करने लगे।

अन्ततः वायु भी लेना छोड़ दिया। श्वांस रोके तपस्या करते रहे। सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि अनेक बार आकर चली गईं पर उनका ध्यान न टूटा। शरीर मात्र हड्डियों का ढांचा रह गया था। अनेक बार ब्रह्मा, विष्णु, महेश उन्हें दर्शन देने उनके पास आए पर वे ध्यान मग्न ही रहे।

अंततः एक दिव्य भविष्यवाणी हुई– ''हे तपोधन राजन्! वर माँगो।''

वाणी सुनते ही उनकी देह पहले से भी अधिक सुन्दर एवं स्वस्थ हो गई। वे अत्यन्त भाव भरे निश्छल शब्दों से भगवान की स्तुति करने लगे। प्रसन्न होकर प्रभु प्रकट हो गए। उनका रूप इतना सुन्दर था कि संसार की किसी भी सुन्दरता से या किसी भी देवी–देवता की सुन्दरता से उसकी तुलना करना संभव ही न था।

परमात्मा ने श्री मनु–शतुरूपा से कहा कि आप कोई भी वरदान माँग लो। वे रुंधे कंठ से बोले– ''हे परमात्मन्! आपके दर्शन हो गए अब क्या माँगना शेष रहा हमारी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गई है।''

परमात्मा बोले– ''मेरे लिए कुछ भी देना असंभव नहीं है। आप निस्संकोच अपनी इच्छा बताओ।''

तब मनु महाराज बोले– ''प्रभो! आप

कुछ देना ही चाहते हैं तो हमारी अभिलाषा है कि हमें आप जैसा पुत्र प्राप्त हो।''

परमात्मा हँसे– ''मेरे समान दूसरा कोई है ही नहीं, तो तुम्हारा पुत्र किसे बनाऊँ? किन्तु मैंने आपको वर माँगने को कहा है तो अपना वचन अवश्य पूर्ण करूँगा। मैं ही त्रेतायुग में जब अवतार लूँगा तो आपके घर पुत्र रूप में अपने अंशों सहित जन्म लूँगा। माता शतरूपा ही मेरी माता बनेंगी। तब तक आप दोनों देवताओं की राजनगरी अमरावती में सुख पूर्वक रहो।''

त्रेतायुग आने पर वे ही महाराज मनु शतरूपा रघुवंशी प्रतापी राजा अज और इन्दुमति के घर दशरथ बनकर जन्में। समयानुसार कौसल किशोरी कौसल्या उनकी पटरानी बनी। तत्पश्चात् सुमित्रा और कैकई भी उनकी धर्म पत्नियाँ बनीं।

महाराज दशरथ अत्यन्त पराक्रमी और महान योद्धा थे। अपने प्रतापी पूर्वजों की भाँति दशरथ भी देवासुर संघर्षों में देवताओं की सहायता करते थे। देवताओं व अपनी प्रजा के रक्षण हेतु इनका विजय–रथ दसों दिशाओं में बिना बाधा के दौड़ता था, अर्थात् किसी में उसे रोकने का साहस न था। इसलिए वे 'दशरथ' कहलाए।

तथापि–दशरथ को किन्ही कर्मफलों के कारण कुछ घटनाओं में अपयशी भी बनना पड़ा।

महाराज दशरथ शब्दभेदी धनुर्विद्या में निपुण थे। किसी भी ध्वनि को सुनकर बिना देखे ध्वनि करने वाले को बाण मार सकना उन्हें बड़ी कुशलता से आता था। एक बार वे पवित्र सरयू नदी के किनारे आखेट को गए। तभी संध्या के अस्पष्ट प्रकाश में उन्हें एक गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी ऐसा लगा मानो कोई हाथी जल पी रहा है। राजा दशरथ ने अपना बाण आवाज की दिशा में छोड़ दिया।

''हे भगवान!'' एक करुण मानवी चीख उनके मन, मस्तिष्क को चीर गई। वे चकराए अवश्य ही कोई अनर्थ हो गया है। यह तो कोई पशु नहीं, मानव की चीख है। वे घबराते हुए वहाँ पहुँचे तो देखा एक ब्राह्मण कुमार उनका बाण हृदय में समाए छटपटा रहा है।

दशरथ ने विव्हल होकर पूछा– ''कौन हो वत्स तुम! और इस निर्जन किनारे पर क्या कर रहे थे। मैं तो समझा कोई पशु है, इसी कारण

बाण चला दिया।''

''आपकी वेशभूषा बता रही है..... आप राजा हैं।..... मेरे पास अधिक समय नहीं है। मेरे..... प्राण निकलने को व्याकुल हैं। ओह..... बहुत पीड़ा हो रही है। पीड़ा बाण की कम..... इस बात की अधिक है..... कि मेरे अँधे माता-पिता प्यासे हैं। वे मेरी..... प्रतीक्षा कर रहे हैं..... कि मैं पानी पिलाने पहुँचू।'' वह युवक पीड़ा के कारण रुक-रुककर उखड़ती श्वासों को प्रयत्न पूर्वक समेटते हुए बोला।

''अँधे माता-पिता? उन्हें क्यों लाए यहाँ? कौन हो तुम?'' दशरथ का आश्चर्य बढ़ता गया।

''मेरा नाम..... श्रवण है। मेरे माता-पिता..... वृद्ध हैं..... स्वयं चल नहीं सकते। वे..... देख भी नहीं सकते..... पर उनकी..... तीर्थ यात्रा करने की..... बहुत इच्छा थी। मैं..... निर्धन ब्राह्मण..... साधन रहित पर माता-पिता की इच्छा पूरी करना..... हर संतान का परम धर्म है न..... इसलिए..... एक काँवड़ बनाकर..... उसी में माता-पिता को बैठाकर काँधे पर काँवड़ लिए..... तीर्थ यात्रा पर..... निकला था। पर कैसा दुर्भाग्य..... यह यात्रा अधूरी..... अधूरी ही रही।'' उसकी श्वासें टूट रही थीं।

''मैं राजवैद्य को बुलवाता हूँ, रुको, अभी अपना रथ लाता हूँ।'' दशरथ विव्हल थे।

''नहीं राजन्!... अब समय नहीं... हो सके तो मेरे माता-पिता को... यह जल पिला दो।'' और श्रवण ने प्राण त्याग दिए।

भयभीत और दुखी राजा जब जल पिलाने उन वृद्ध पति-पत्नी के पास पहुँचे तो घटना छुप न सकी और ''जैसे हम हमारे पुत्र के वियोग में प्राण त्याग रहे हैं तुम भी अपने पुत्र के वियोग में ही मृत्यु प्राप्त करोगे राजन्! ये शाप है हमारा।'' और वे भी स्वर्ग सिधार गए।

एक असावधानी कितना भयंकर परिणाम दे सकती है यह इस प्रसंग की बड़ी सीख है।

'राजा दशरथ जो शनिदेव के रोहिणी नक्षत्र के भेदन को रोकने के लिए शनिग्रह की दिशा बदलने में समर्थ थे जिससे कि उनके राज्य में इस कारण अकाल न पड़े' उनका ही एक बाण इस निर्दोष परिवार की अकाल मृत्यु का कारण बन चुका था।

देवसहायक दशरथ

वही सफल सामर्थ्य है, आए और के काम।
यश फैले पुरुषार्थ का, उज्ज्वल हो कुल-नाम।।

महाराज दशरथ के शौर्य पराक्रम का महर्षि वाल्मीकि और महाकवि कालिदास ने भी बहुत वर्णन किया है। एक कथा जो भावी रामचरित की भी दिशा निर्धारक सिद्ध हुई वह ऐसी है-

एक बार दण्डकारण्य में शंबर नामक असुर ने अत्यन्त उत्पात मचाया। वह इतना उद्दण्ड था कि देवताओं पर भी धावा करता रहता। देवराज इन्द्र भी उसकी शक्ति व माया के आगे विवश थे। तब अयोध्यापति महाराज दशरथ को इन्द्र की सहायता के लिए बुलवाया गया।

महाराज अपने रथ पर सवार हुए। उनकी छोटी रानी कैकय कुमारी कैकई भी उनके साथ थी। रानी स्वयं रथ संचालन और रणकला में निपुण थी। शंबर-दशरथ का भीषण युद्ध हुआ। कोई हारने को तैयार नहीं। तभी उस दुष्ट असुर के प्रहार से महाराज दशरथ मूर्च्छित हो गए। सेना में भगदड़ मचती, इसके पूर्व ही धनुष रानी कैकई के हाथ में था। अब मूर्च्छित होने की बारी शंबरासुर की थी। उसे मूर्च्छित कर रथ की बागडोर सम्हाले वह महाराज को रणक्षेत्र से सुरक्षित बाहर ले आई। सचेत होने पर दशरथ पुन: युद्ध में गए शंबरासुर का वध कर ही रहे थे कि उनके रथ का पहिया निकलने लगा। कैकई ने तुरंत पहिए की कील की जगह अपनी अँगुली लगा दी और पुन: महाराज की प्राण रक्षा हुई।

महाराज ने कैकई को दो बार प्राण रक्षा के बदले दो मन इच्छित वर माँगने को कहा। कैकई ने विनयपूर्वक - ''ये दो वर, उधार रहे। जब आवश्यकता होगी माँगूँगी।'' कहकर टाल दिया। यद्यपि ये दो वर ही दशरथ के प्राणहारी सिद्ध हुए और रामायण के निर्णायक मोड़ बने।

महाराज दशरथ अत्यन्त वैभव सम्पन्न अवध के महान सम्राट चक्रवर्ती नरेश थे। उनका मान-सम्मान इतना था कि स्वयं इन्द्र

भी उनको अपने आधे सिंहासन पर बैठाता था।

एक बार दशरथ प्रातः काल कहीं जा रहे थे कि सामने से आ रहे एक अयोध्यावासी ने उन्हें देखते ही मुँह फेर लिया। राजा के लिए यह अपमान था पर उन्होंने सोचा ऐसा नागरिक ने भूलवश किया है वे इन्द्र सभा में पहुँचे। खानपान मान–सम्मान के बाद लौटे, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि इन्द्रासन को गंगाजल से धुलवाकर शुद्ध किया गया है। कारण पता करने पर कि उनके पुत्रहीन होने से अपशकुनी मानकर ये व्यवहार हुए थे। राजा अत्यन्त दुःख से भर उठे। तीन–तीन रानियाँ पर संतान कोई नहीं। दर्पण में देखा तो कान के पास बाल सफेद होने लगे थे यानि वृद्धावस्था आने वाली है। दशरथ बहुत दुखी होकर गुरु वसिष्ठ की शरण में गए। महर्षि वसिष्ठ ने उन्हें पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने का उपाय बताया।

इस कथा में दो बातें विशेष रूप से समझने योग्य हैं। पहली उस काल में भी भारतवर्ष में बालिकाओं को समस्त प्रकार की शिक्षाएँ उनकी योग्यता और प्रतिभा के आधार पर दी जाती थीं। यही कारण था कि महारानी कैकयी महाराज दशरथ का ऐसे भयंकर युद्ध में साथ दे सकीं। बालिकाओं को दी गई उचित शिक्षा–दीक्षा समय पड़ने पर राष्ट्र एवं समाज की रक्षा में वरदान सिद्ध होती है। भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास बताता है कि ज्ञान, विज्ञान सहित कला और रक्षा सभी विषयों में भारतीय नारियाँ अपना योगदान देती रही हैं।

यज्ञ से कामनापूर्ति

यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है, कहे वेद यह मर्म।
सकल कामना पूर्ती का, साधन है सद्धर्म।।

अयोध्या के राजभवन में चारों ओर बड़े सात्विक वातावरण में एक यज्ञ की तैयारी की जा रही है। सूर्यवंशी राजाओं की पवित्र राजधानी अयोध्यापुरी अब तक अनेक राजसूय, अश्वमेध आदि महान यज्ञ-अनुष्ठान देखती रही है लेकिन आज जैसा यज्ञ इस पवित्र नगरी में भी कभी नहीं हुआ।

महर्षि वसिष्ठ स्वयं देवगुरु बृहस्पति के समान सुशोभित हैं। इस विशिष्ट यज्ञ के अनुष्ठान के सबसे विशेषज्ञ श्रृंगी ऋषि प्रधान पुरोहित बने पधारे हैं। आज यज्ञ विज्ञान का वह विकसित प्रयोग प्रदर्शित होने जा रहा है जिससे यथेष्ट सन्तान की भी प्राप्ति संभव है। यह यज्ञ चिकित्सा है, मंत्र चिकित्सा है भारतीय प्राचीन वैज्ञानिक ऋषियों का अनूठा अनुसंधान।

यहाँ श्रृंगी ऋषि का परिचय भी प्राप्त करते चलें। ये महर्षि विभांडक के पुत्र थे। महाराज दशरथ और महारानी कौसल्या की भगवान राम के पूर्व भी एक पुत्री शांता थी। जो वेद कला और शास्त्रों की मर्मज्ञ बनी। बचपन में ही इसे कौसल्या ने अपनी बहिन वर्षिणी को सौंप दिया था। वर्षिणी अंग देश के महाराजा की पत्नी थी। इसलिए शांता अवध के राजमहलों में नहीं पली अपितु अंग देश के राजा की दत्तक पुत्री हो गई।

इसी का विवाह महर्षि श्रृंगी ऋषि के साथ हुआ। जो आज इस विशेष पुत्रकामेष्टि यज्ञ के प्रधान पुरोहित बनें। इस प्रकार इस संबंध से दशरथ के जामाता भी थे।

विशिष्ट मंत्रों से आहुतियाँ दी जाने लगी। यज्ञ ज्वालाएँ बढ़ती जा रही थीं। उनके दिव्य प्रकाश से अयोध्या के स्वर्णभवन में दैवीय दीप्ति व्याप्त हो उठी थी। यज्ञ की गंध देवताओं को भी लुभा रही थी फिर मानवों के लिए तो बात ही क्या?

तभी यज्ञ ज्वालाओं से साक्षात् अग्निदेव प्रकट हुए। अत्यंत तेजोमय। उनके चार हाथ

और दो सिर थे। देह अत्यन्त ही प्रकाशमय। उनके हाथ में एक स्वर्ण पात्र था। जिसमें अमृत तुल्य खीर भरी थी। उनकी दिव्य वाणी गूँजी– ''राजन्! मैं तुम्हारी आहुतियों से तृप्त हूँ। देवताओं की कामना पूर्ण करने हेतु परमेश्वर की इच्छा से यह दिव्य औषधीय पायस (खीर) लाया हूँ। इसे प्रसाद स्वरूप अपनी रानियों में बाँट दो। तुम्हारी कामना अवश्य पूर्ण होगी।''

महाराज ने श्रद्धापूर्वक पात्र ग्रहण किया। गुरुदेव की सम्मति से उस प्रसाद के तीन भाग किए, एक भाग कौसल्या को, दूसरा भाग सुमित्रा को और तीसरा भाग कैकई को वितरित कर दिया। सभी रानियों में अत्यन्त स्नेह था। कौसल्या व कैकई ने अपने भाग में से भी थोड़ा–थोड़ा सुमित्रा को और दे दिया।

यज्ञ सम्पन्न हुआ। सभी अवधवासी और देवगण भी यज्ञ के फल अर्थात् महाराज दशरथ की संतानों को देखने को आतुर थे।

यज्ञ भारतीय संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग है। वेदों में यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म बताया है। यज्ञ द्वारा समस्त कामनाओं की पूर्ति का उल्लेख आता है। इस कथा में अग्निदेव जो औषधि युक्त खीर महाराज दशरथ को देते हैं। यह मंत्र और औषधि का, यज्ञ द्वारा संपन्न विशिष्ट प्रयोग प्रतीत होता है।

भए प्रकट कृपाला

**देव, धर्म, गौ, धरणी हित, प्रभु लेते अवतार।
दुष्टों को संहारते, होती जय-जयकार।।**

आज पुण्यपुरी अयोध्या धन्य होने जा रही है। यह वैदिक मधुमास यानि चैत्र का पवित्र महिना है। शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि है। ज्योतिषी बता रहे हैं यह पवित्र अभिजित नक्षत्र की बेला है। सूर्यदेव गगनमण्डल में मध्य में है दुपहर बारह बजे का समय। न अधिक ठंड है न गर्मी। अवधेश दशरथ के रनिवास में विशेष चहल-पहल है। राजवैद्य ने बताया है कि आज ही महारानी कौसल्या पुन: माता बनने वाली हैं। सभी उत्साहित थे कि अचानक माता कौसल्या का कक्ष अलौकिक प्रकाश से भर उठा। उन्हें इस पल कुछ भी स्मरण नहीं केवल सामने उपस्थित अनन्त तेजमय चतुर्भुजरूपधारी शंख चक्र गदा पद्म और वनमालाधारण किए दिव्य मुकुटादि अलंकारों से सुसज्जित भगवान साक्षात् खड़े हैं।

माँ कौसल्या बोली- हे अनन्त! आपकी स्तुति मैं कैसे करूँ? ब्रह्मा, नारद, शिव, वेद पुराण भी आपके रूप-गुण-लीला का पार नहीं पाते तो मैं क्या कहूँ?'' वे आनंद विभोर थी। उनके शब्द नहीं फूट रहे थे। भगवान ने माता की यह दशा देखी तो मुस्कुराए। भगवान जानते थे उन्हें मनुष्य बनकर अनेक लीलाएँ करना है। वे लीलाएँ जिनसे मनुष्य सीखें। धर्म को जानें, नीति को मानें और अपने कर्त्तव्य पहचानें। जिससे एक सुन्दर एवं सम्पूर्ण समाज का निर्माण हो सुराज्य स्थापित हो।

भगवान की प्रेरणा से ही माँ को पूर्व जन्म में मनु शतरूपा के रूप में प्राप्त वरदान स्मरण हो आया। वे धन्य हो उठीं फिर प्रभु ने माया की और वे अचानक सामान्य माँ की तरह बोल उठी- ''ये चार हाथ वाले इतने दिव्य स्वरूप वाले रूप को मैं गोद में कैसे खिलाऊँगी। आप यह रूप छोड़ो मैंने माँ बनने का वर माँगा था इसलिए शिशु बनो।''

भगवान मुस्काए- ''शिशु भगवान ही तो

होता है।'' वे अभी-अभी जन्मे बच्चे जैसे रोने लगे। माँ ने भी अभी जो देखा सुना जाना वह भूल गई और अपने 'रामलला' को देखने में खो गई।

बच्चो! माँ कौसल्या की इस दशा का वर्णन राम कथा के अनन्य गायक गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। यहाँ से रघुवंश में राम कथा का आरंभ हो रहा है। इसलिए गोस्वामी जी का वह प्रसिद्ध पद इस अपेक्षा के साथ आपके लिए यहाँ प्रस्तुत है कि आप उसे कंठस्थ कर उसका अर्थ भी जानते हुए अवश्य गायेंगे-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी।।
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता।।
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।।
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

(श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दोहा क्रमांक १९२)

अयोध्या में श्रीरामजन्मभूमि जहाँ भव्य मंदिर निर्माण हुआ है, वही स्थान है, जो युगों-युगों से हिन्दू आस्था का केन्द्र है।

अयोध्या का आनंद

**है समाज वह देवता, जिसके हाथ हजार।
उसका स्नेह दुलार है, बालक का अधिकार।।**

सारी अयोध्या में यह समाचार सुगंध की तरह फैल गया। अवधवासी तो इसी पल के लिए आस लगाए बैठे थे। पुत्र कौसल्या को हुआ था पर हर अयोध्यावासी अपने राजकुमार के जन्मोत्सव में डूबा था। हर कोई इस आनंद में भेंट, दान, दक्षिणा देना चाहता था। लेने वाला कौन बनता, आज सब लुटाने का सुख लूटना चाहते थे।

महाराज दशरथ का राजकोष खुल गया। अपार दान दक्षिणा, न्यौछावर दिए जा रहे थे। जिसने जो माँगा उससे अधिक ही पाया। जिसने कुछ न माँगा उसने भी भरपूर पाया।

महर्षि वसिष्ठ पधारे। जातकर्म आदि संस्कार हुए। आए तो दर्शन को अनेक देवगण भी पर उन्हें सामान्य मनुष्य तो पहचान नहीं सके। देवताओं को अपने प्रकार का आनंद था।

समयानुसार माता सुमित्रा ने शेषावतार लक्ष्मण को जन्म दिया। फिर उनके अनुज के रूप में कुमार शत्रुघ्न ने जन्म पाया। इस बीच माता कैकई की गोद भरत को पाकर धन्य हुई। सबसे बड़े राम फिर लक्ष्मण और भरत तथा सबसे छोटे शत्रुघ्न। दशरथ ने यज्ञ का चौगुना फल पाया था।

ये नामकरण महर्षि वसिष्ठ ने किए थे। महर्षि ने नामकरण संस्कार का महत्व समझाते हुए बताया– ''मनुष्य का नाम आजीवन उसके चरित्र का अभिन्न अंग होता है। यहाँ तक कि मृत्यु के बाद देह नष्ट हो जाने पर भी नाम शेष रहता है। अत: नाम हमेशा सार्थक होता है। नाम के अनुसार बच्चे के गुणधर्म, स्वभाव, चरित्र प्रभावित होते हैं। नाम व्यक्तित्व का दर्पण है पहचान है। इसलिए संतान का नाम हमेशा सार्थक रखना चाहिए।''

दशरथ बोले– ''गुरुदेव! मेरे इन चारों राजकुमारों के योग्य नाम आप ही बताएँ। कृपया इनका नामकरण संस्कार करें।''

महर्षि बोले– ''देखो राजन्! मैं दिव्य दृष्टि से देख पा रहा हूँ कि ये बड़े कुमार तो अनेक दिव्य चरित्र करेंगे। इनके अनेक नाम पहले से भी हैं और आगे भी होंगे तथापि आज की वर्तमान संस्कार विधि के अनुसार इस सांवले सुन्दर बालक का नाम 'राम' होगा। क्योंकि यह सबको सुख देने वाला, शांति प्रदान करने वाला होगा।

महारानी कैकई की गोद में जो राम के रंग के ही शांत स्वभाव राजकुमार हैं, वे विश्व का भरणपोषण करने वाले होने से 'भरत' कहलाएँगे। बड़े सुमित्रानंदन स्वभाव से उग्र और वीरता में असाधारण होंगें। अनेक शुभ लक्षणों वाले होने के कारण ये 'लक्ष्मण' कहलाएँगें और सबसे छोटे सुमित्रानंदन का नाम 'शत्रुघ्न' होगा क्योंकि इनके नाम मात्र से भी शत्रु नाश को प्राप्त हो जाएँगे।''

धीरे–धीरे बड़े होते हुए चारों राजकुमार अयोध्या के राजभवन में अत्यन्त आनंद देते हुए शिशु लीलाएँ करने लगे।

कौसल्या की लोरियाँ

लोरी ममता गीत है, लोरी है संस्कार।
लोरी शिशुओं में करे, सु-गुण भाव संचार।।

अयोध्यापति दशरथ के आँगन में भगवान श्रीराम ने अपने छोटे भाइयों के साथ अनेक लीलाएँ कीं। अनेक कवियों, भक्तों और संतों ने श्रीरामचन्द्र की अनेक लीलाओं का वर्णन किया है। बच्चों की शिशु अवस्था से ही उनके भावी जीवन का आभास मिलने लगता है। भगवान होते हुए भी सामान्य मनुष्यों की भाँति विविध लीलाएँ करते हुए मानो वे अपने अवतार का एक उद्देश्य संसार को शिक्षा देना, संस्कार सिखाना, पूर्ण करते हैं।

एक दिन माँ कौसल्या ने नन्हे रामलला को स्नान कराया और श्रृंगार करके धीरे-धीरे थपकियाँ देकर सुलाने लगी। पालने में झुलाते-झुलाते लोरी के मधुर स्वर माँ के कंठ से फूटने लगे जिनमें वर्णन था रघुवंश के पूर्वजों के यश का, गौरव का, वीरता का। माँ प्राय: उन्हें लोरियाँ सुनाती। कई बार अपनी अयोध्या नगरी, कोसल प्रदेश, भारतवर्ष, कभी सरयू की पावनता व्यक्त करते भावों से भरे ये गीत होते। शब्दों के अर्थ न जानते हुए भी, शिशु के मन में ऐसे लोरी गीत अपने देश-धर्म-कुल-गौरव, अपनी धरती अपने लोगों के प्रति सकारात्मकता, गौरव, अनुराग के भाव चित्र बनाते जाते हैं, यह वे भली प्रकार जानती थीं।

बालक है भगवान

मात–पिता संतान के, होते हैं भगवान।
पर भगवान का रूप ही, उनके हित संतान।।

एक बार माँ ने समझा बालक राम सो गए हैं वे उन्हें पालने में छोड़, भगवान विष्णु की पूजा में लग गईं। ठाकुर जी को नहलाया, शृंगार किया, चंदन लगाया और आँख मूँदकर नैवेद्य लगाने लगी। भगवान से मन ही मन प्रार्थना कि 'भोग लगाओ'।

आँखें खुली तो अवधेशनंदन रामलला को थाल में से मिष्ठान्न खाते देखा। माँ चौंकी– ''अरे! यह तो सो रहा था? उठ कब गया!'' पीछे पालने में झाँका तो रामलला सो रहे थे। नींद में ही मुख पर मुस्कान खिल रही थी। बच्चे पूर्वजन्म की बातें याद करके मुस्कुराते हैं ऐसी लोकमान्यता है। माँ भी मुस्कुराकर घर के ही मंदिर पहुँची। वहाँ तो रामलला द्वारा अब भी भोग लगाया जा रहा था।

माँ के लिए बालक ही इष्टदेव बन गए थे इष्टदेव ही बालक। मानों बताना चाह रहे हों कि अपने बालक को भगवान से कम न मानो मैया!

माँ की व्याकुलता बढ़ी तो भगवान ने यहाँ फिर विराट दिव्य रूप दिखाया ऐसा संतगण बताते हैं। कौसल्या माँ को करवाया गया यह अनुभव हर माता को करना चाहिए कि वह अपनी संतान में भगवान का रूप देखे।

सबके राम

राम न कोई एक के, प्राणी मात्र के राम।
जड़ चेतन में जगत के, रमते हैं श्रीराम।।

रामलला अब बड़े हो रहे थे। ठुमुक-ठुमुक कर दशरथ के राज भवन में घूमते। कभी धरती पर लोटपोट हो जाते मानो धरती माता को भी उन्हें अपनी गोद में लेने का सुख देना है, वह भी तो माँ है। उसी का दु:ख दूर करने के लिए तो राम ने जन्म लिया है।

भोजन कभी अकेले न करते तीनों भाई तो साथ होना ही होगा अन्य मंत्रीगणों और राजकर्मियों के बच्चे भी मिल जाएँ तो और आनंद।

दशरथ भोजन करने बैठते तो उन्हें देखकर रामलला को आँखें मूँदकर भोजन मंत्र बुदबुदाने की नकल तो होती पर पूरा भोजन एक स्थान पर बैठकर करना न भाता। हाथ में रोटी, रोटी पर खोया या माखन और उसे लिये लिये खेलने-खाने में खो जाते। सारे आँगन में उनकी पैंजनियों की मीठी रूनझुन भर जाती।

एक दिन तो काकभुशुण्डि ही आ गए। काले कौए की काँव-काँव सुन दशरथनंदन हाथ में रोटी लिए उधर ही दौड़े। पुराण कहते हैं काकभुशुण्डि राम के बालरूप के ही भक्त हैं। 'इष्टदेव मम बालक रामा' तुलसी बाबा ने भी लिखा है। इसलिए वे राम के हाथ से रोटी लेना चाहते। चोंच बढ़ाते तो राम हाथ खींच लेते। दूसरा हाथ बढ़ाकर राम उन्हें पकड़ने को आगे बढ़ते, तो कौए महाराज पीछे खिसकते। उनकी यह क्रीडा बहुत देर तक चलती रही। अंतत: राम का प्रसाद उन्हें मिल ही गया।

मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य प्राणी, पंछी, चौपाए भी तो अपने ही हैं। कौए को रोटी और गाय को गुड़ खिलाते समय वे यही तो बताना चाहते थे।

अपनत्व का विकास

मात, पिता, परिवार फिर, स्वजन, नगर के लोग।
विकसित अपनापन सदा, रचता प्रिय संयोग।।

चारों भाई धीरे–धीरे बड़े हो रहे थे। राजभवन की दीवारें उनकी अनूठी चित्रकारी से निखरने लगी। कभी उनका मनइच्छित संगीत उत्पन्न होने लगता। राजा को चिंता थी राजकुमारों में राजोचित गुण–संस्कार बनें। नन्हें–नन्हें धनुष बाण, छोटी–सी तलवार भी उनके खिलौनों में सम्मिलित किए गए थे।

राम और भरत स्वभाव से शांत–गंभीर तो लक्ष्मण व शत्रुघ्न चंचल–चपल। राम तो सबसे विलक्षण सब भाइयों का ध्यान रखते। राजा दशरथ अपनी रानियों के साथ इनकी क्रीडाओं का आनंद लेते धन्य हो रहे थे। धीरे–धीरे इन क्रीडाओं का आनंद राज भवन से बाहर भी बिखरने लगा। अब हर अयोध्यावासी उन्हें खेलते देखते तो मन ही मन कुछ पल सारी मर्यादाएँ भूलकर स्वयं को दशरथ कौसल्या ही मान बैठते, अनन्य वात्सल्य, अगाध ममता। ये राजकुमार भी तो उन्हें ऐसा मानने को प्रेरित करते।

अपनत्व का निरंतर विस्तार ही बचपन का उचित विकास है। राम यही बता रहे थे। स्व का विकास सृष्टि तक विस्तृत होता चला जाए यही तो पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीराम सिखा रहे थे।

राष्ट्रधर्मरक्षकों का निर्माण

राष्ट्रधर्म रक्षा सदा, पहला जीवन ध्येय।
मानवता का त्राण तज, और न कोई प्रेय।।

चारों भाई अब तक वैदिक रीति से संस्कारित हुए थे। अब उनकी अवस्था गुरुकुल जाने की हो चली थी। यज्ञोपवीत के साथ ही उपनयन यानि गुरु के पास ले जाने का संस्कार भी सम्पन्न हुआ। इतने सुन्दर, प्राणों से भी प्रिय बच्चों से अलग होकर रहने की कल्पना ही माता-पिता के लिए कष्टकारी थी। लेकिन बच्चे केवल हमारे और हमारे परिवार के लिए नहीं, सम्पूर्ण समाज की, पूरे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। माता-पिता तो केवल इस सम्पत्ति के संरक्षक हैं, स्वामी नहीं। महाराज और महारानियाँ यह जानती थीं। इन्हीं बच्चों को आगे चलकर अवध के राज्य का सूर्यवंश की परम्परा अनुकूल उत्तम राजा बनना था।

चारों भाई गुरु वसिष्ठ के आश्रम के ब्रह्मचारी विद्यार्थी बन गए। अब राजसी वैभव न था। कठोर, सेवा परायण एवं संयमित जीवन, अनुशासन और एकाग्रता उन्हें 'निसिचर हीन करहूँ मही' जैसा राष्ट्रधर्मी संकल्प ले सकने योग्य बनाने के लिए आवश्यक थी।

राम और उनके भाइयों ने शास्त्र समझे। वे चारों वेद और छहों शास्त्र का अध्ययन करने लगे। उन्होंने शस्त्र संचालन सीखा। वे शरीर को पुष्ट करने वाले व्यायाम करते। चपलता और विजय की भावना जगाते खेल खेलते। खेलों को खेलते समय गुरुकुल के सभी विद्यार्थी एकरस हो जाया करते थे। किसी में कोई भेद-भाव या विषमता की भावना नहीं रहती। योग के यम, नियम आदि से संयमित व संस्कारित विकास पाता मन, संकल्पों में दृढ़ और अपनत्त्व में उदार होता जाता था। चित्त की एकाग्रता, उन्हें शास्त्रों को समझने और शस्त्रों के प्रयोग में प्रवीणता प्रदान करती थी। उस काल में राष्ट्र के शत्रु अर्थात् राक्षसी संस्कृति के महाबली असुर भी विज्ञान बुद्धि से सम्पन्न थे। अत: इन कुमारों को भी अपनी विज्ञान चेतना, अनुसंधान वृत्ति

जाग्रत रखना थी। जीवन केवल संघर्ष नहीं अपितु सृजन का अनुष्ठान है। इसलिए राम और उनके भाई अनेक कलाओं और संगीत विद्या का भी अध्ययन करते थे। वे समाज उपयोगी विविध शास्त्रों का अध्ययन करते और स्वयं को अवध के विशाल साम्राज्य के सुयोग्य उत्तराधिकारी के लिए आवश्यक समस्त गुणों से सम्पन्न बना रहे थे। राम अत्यन्त मेधावी थे। उनका लक्ष्य सुस्पष्ट था। अत: सारी कला विद्याएँ उन्होंने बहुत थोड़े से समय में ही प्राप्त कर ली थीं।

राम तो भगवान थे, लेकिन अन्य मानवों को शिक्षा देने, सिखाने के लिए ही वे बिलकुल मनुष्यों के सामान्य बच्चों की तरह विद्याध्ययन की लीला कर रहे थे। मनुष्य का जीवन केवल युद्ध नहीं वरन मूलत: तो वह सृजन ही है अत: सृजनात्मकता जगाती सारी कलाएँ, संगीत, शारीरिक शिक्षा, योग साधना आदि सीखते हुए ये राजकुमार सामान्य बच्चों से भी कुछ अधिक ही नीतिज्ञता, सामाजिक समदृष्टि और सबको समरूप, सबमें आत्मवत ईश्वरी अंश देखना, प्रकृति प्रेम, सेवाभाव, सब कुछ सीख रहे थे गुरुआश्रम में।

वसिष्ठ का गुरुकुल एक नए, निर्भय और नैतिक विश्व के लिए अपने शिष्यों को गढ़ रहा था।

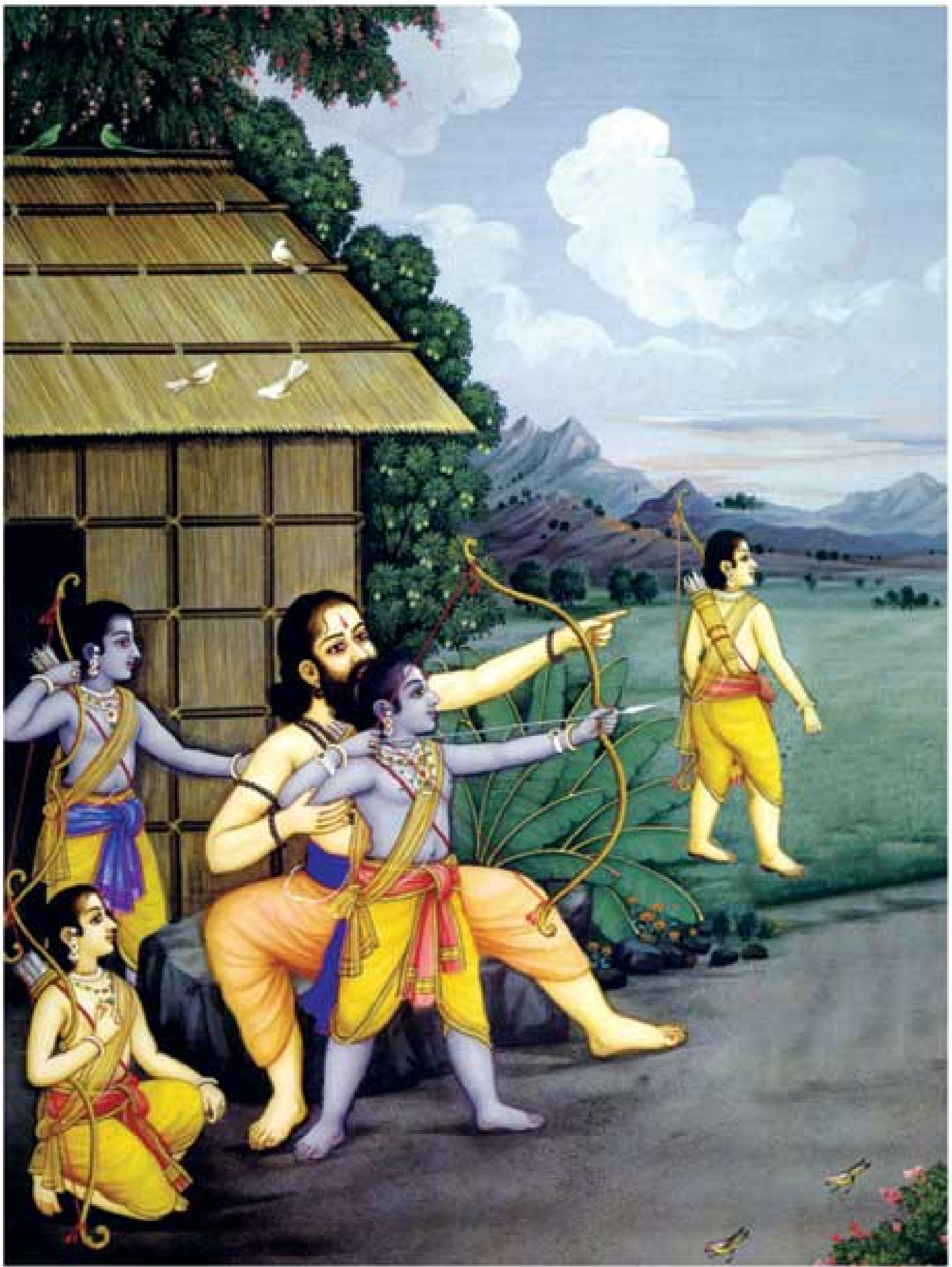

वास्तविक परीक्षा की घड़ी

सीखा, जाना, पढ़ लिया, तब तक है सब व्यर्थ।
कर दिखलावे जो वही, जग में सफल, समर्थ।।

चारों भाई शीघ्र ही सभी अपेक्षित कला-विद्याओं में निपुण हो गए। अब अयोध्यावासी उनका शैशवकाल के रूप से भिन्न रूप देख रहे थे। राजकुमार उन्हें कभी घोड़े दौड़ाते तो कभी धनुर्विद्या का अभ्यास करते, कभी व्यायाम करते तो कभी इतिहास और अन्य शास्त्र पढ़ते, देखते। राजा दशरथ के द्वारा इस सबकी समुचित व्यवस्था की गई थी।

गुरुकुल में प्राप्त शिक्षा अभ्यास न करते रहने पर नष्ट होने लगती है। गुरुकुल में सीखे संस्कारों के पौधे अभिभावकों द्वारा घर पर न सींचे जाएँ तो फल देने से पहले ही मुरझा सकते हैं। दशरथ ने अपने मंत्रियों को भी इस ओर सावधान किया था। यद्यपि राम सामान्य बालक न थे, पर उन्हें वह सब कर दिखाना था जो सब बच्चों को करना चाहिए।

एक दिन वह भी आया जब इस सारी शिक्षा-दीक्षा की वास्तविक परीक्षा होनी थी। महामुनि विश्वामित्र गंगा के दक्षिण तट पर अपने सिद्धाश्रम में एक लोकमंगलकारी यज्ञ करना चाहते थे, पर दुष्टा राक्षसी ताड़का अपने पुत्रों मारीच व सुबाहु के साथ इस यज्ञ को अपवित्र कर असफल बना देती थी।

राजा दशरथ की राजसभा में विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को यज्ञ रक्षा के लिए ले जाने की माँग रखी। राजा बोले-''सेना सहित मैं चलूँ।'' विश्वामित्र बोल- ''नई पीढ़ी को देश-धर्म-समाज की रक्षा में खड़े होने का प्रशिक्षण कैसे मिलेगा राजन्!''

''पर इन्हें युद्ध का, निशाचरों से लड़ने का अनुभव नहीं है ?''

''अनुभव करने से होगा राजन्! आज आतंक के विरुद्ध खड़े होने का पहला अवसर है इनका, इन्हें आशीर्वादपूर्वक आगे बढ़ाइए।''

राजा जानते थे विश्वामित्र स्वयं युद्ध विशारद, शस्त्रास्त्र विद्या के पारंगत ऋषि हैं।

ममता ने मन कमजोर किया तो गुरु वसिष्ठ ने कर्त्तव्य बोध जगाया।

राम लक्ष्मण धनुष बाण धारण कर चल पड़े कर्तव्य पथ पर पहला चरण रखने। मार्ग में ही ताड़का का भीषण आक्रमण हुआ। यज्ञ संस्कृति, देव संस्कृति, इसे मिटाने वाले को, मिटा देना ही धर्म है। राम ने ताड़का का वध किया।

ताड़का स्त्री थी। गुरु विश्वामित्र ने समझाया– ''आतंक स्त्री–पुरुष नहीं देखता तो आतंकी में स्त्री–पुरुष का भेद कैसा राम!''

कर्त्तव्यनिष्ठ राम–लक्ष्मण को विश्वामित्र ने अनेक दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दी। वे बड़ी तपस्या, अनुसंधान से प्राप्त अद्भुत शस्त्रास्त्र थे।

राम–लक्ष्मण यज्ञ रक्षा में सन्नद्ध थे। सिद्धाश्रम में मंत्रों सहित स्वाहाकार गूँज उठा। तभी मारीच आया। एक ही बिना फर के बाण से समुद्र पार फेंक दिया गया। सुबाहु के बाहु सु–कर्म न करने से सु–बाहु न रहे तो राम का बाण उन्हें कैसे रहने देता? सुबाहु का भी नाश हुआ।

राम होने का अर्थ

सत्ता सिंहासन नहीं, सत्य पंथ, सद्धर्म।
सज्जन रक्षण दुष्ट दलन, राम कथा का मर्म।।

राम के चरण, धर्म-पथ पर बढ़ते चले या यों कहें कि राम के चरण जिस पथ पर बढ़े वही धर्म-पथ हो गया। राम ने गौतम आश्रम में अहल्या का उद्धार किया। एक प्रकार से नारी के अवमान का, अभिशाप का कलंक समाज के माथे से धोया। जनक की राजसभा में घमण्डी राजाओं का मान-मर्दन किया। उन्हें बताया कि शक्ति अहंकार और अनीति के लिए नहीं है। शिव का धनुष तोड़कर सीता को ब्याहने के लिए सब मिलकर एकत्र हो सकने वाले राजा, रावण जैसे आतंकी राजा के खड़ग के विरुद्ध एक न हो सके, इसीलिए राम ने उनका अभिमान चूर कर दिया। परशुराम तो साक्षात शौर्य ही थे, ब्रह्मतेज व क्षात्र तेज का अद्‌भुत समन्वय। ऋषि थे पर उनका फरसा रावण पर न चला। राम ने उनसे भी विनयपूर्वक सामना किया।

राम सत्ता नहीं चाहते, सिंहासन नहीं चाहते। रातों-रात राजतिलक का मुहूर्त, वनवास का प्रसंग बन गया पर राम तनिक भी विचलित न थे। माता-पिता की आज्ञा का पालन और अपने समाज पर भरोसा। राम के पग सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या छोड़ वन की ओर बढ़ चले।

निषादराज गुह, केवट, शबरी, सुग्रीव समाज के ये सब लोग भी राष्ट्र के अंग हैं। इनको छोड़कर अवध का राज्य अधूरा ही रहता। वनवासी राम ने सबको गले लगाया, अपनाया, उनके साथ सुख-दुख बाँटे, उनको सुरक्षा दी उनसे सहायता ली, समरसता स्थापित की।

राम की चौदह वर्ष की वनयात्रा में अनेक कार्य सिद्ध हुए। हनुमान जैसे सर्व गुण सम्पन्न निस्वार्थ सेवा के अनुपम व्यक्तित्व की प्रतिभा का धर्म संस्थापना में योगदान प्राप्त हुआ।

शबरी, निषादराज आदि को अपने होने वाले राजा से निकटता एवं अपनत्व स्थापित करने का अवसर मिला। वानर, भालुओं,

वनचरों को अपनी शक्ति को संगठित रूप से राष्ट्रकार्य में लगने का अवसर मिला और वे समुद्र पर सेतु बनाने जैसे संसार में इससे पहले कभी न हुए कार्य को करने में सफल हो सके।

अयोध्या की सुसज्जित सेना जो न कर सकी वह वनचरों, भालुओं- वानरों ने कर दिखाया। राम ने उनमें वह चेतना जगा दी कि अब हर कोई लड़ना जानता था, अपनी धरती, धर्म, संस्कृति व समाज पर आक्रमण करने वाली राक्षसी शक्तियों से। जो प्रत्यक्ष लड़ न सकते थे, वे लड़ने वालों का मार्गदर्शन करते, उत्साह बढ़ाते। ऋषियों ने यही किया, संपाति ने यही किया और विभीषण जैसे महात्माओं ने अपने कुल परिवार के विपरीत जाकर भी धर्म का पक्ष ग्रहण किया।

सेतुबंध कर रावण जैसे राक्षसों के राजा का वध करने जैसा असंभव-सा कार्य अभियानपूर्वक पूरा हुआ, क्योंकि भारत की सन्नारी सीता को, अनाचारी रावण के चंगुल से छुड़ाना था।

सब जानते हैं राम-रावण का युद्ध जैसा हुआ वैसा युद्ध संसार में आज तक नहीं हुआ। अत्यन्त धनवान, बलवान, मायावी और सुरक्षित दुर्ग में रहने वाला, त्रैलोक्य को अपने आतंक से थर्राने वाला रावण अपने सभी सहयोगियों सहित समाप्त हुआ।

श्रीराम अयोध्या आए। राजा रामचन्द्र जी ने सु-राज्य का उदाहरण प्रस्तुत किया। अनेक

शताब्दियों, सहस्त्राब्दियों के बाद भी अच्छे राज्य का आदर्श 'रामराज्य' माना जाता है।

बच्चो! राम कथा को विस्तार से पढ़ने के लिए आपको श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण और श्रीरामचरित मानस जैसे ग्रंथों का नियमित अध्ययन करना चाहिए। अनेक क्षेत्रीय भाषाओं में भी रामायण की कथा अत्यन्त रोचक ढंग से लिखी गई है। उनका अध्ययन करना भी आपके लिए प्रेरक और ज्ञानवर्द्धक होगा। अत्यन्त संक्षेप में केवल एक श्लोक में भी रामायण है। इसे तो आप सरलता से कंठस्थ कर सकते हैं–

एकश्लोकि रामायणम्

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्।
बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनं
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननमेतद्धि रामायणम्।।

इस एकश्लोक की रामायण में राम के वन गमन से लगाकर रावण, कुम्भकर्ण आदि के वध के प्रसंगों को ही मूलत: रामायण कहा है। इसका एक भाव यह भी है कि श्रीराम का जन्म किस कुल में हुआ वे राजा के बेटे थे। या महारानी के रूप में जगत जननी सीता उनकी पत्नी बनी या रावण वध के पश्चात वे अयोध्या के राजा बने इन महत्वपूर्ण प्रसंगों के बाद भी वन गमन से रावण वध तक की लीलाओं में ही उनके रामत्व का सबके लिए प्रेरक चरित्र है। जो जीवन में त्याग, प्रेम, समरसता, साहस, शौर्य और राष्ट्रधर्म के लिए कठिनतम प्रयत्न करने की प्रेरणा जगाता है।

राम का यह कार्य कितना कठिन था। इसे एक श्लोक द्वारा समझें।

विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि:।
विपक्ष: पौलस्त्यो रणभुविसहायाश्च कपय:।
तथाप्येको राम:सकलमवधीद्राक्षसकुलम्।
क्रियासिद्धि: सत्वे भवति महतां नोपकरणे।।

लंका जैसे दुर्गम दुर्ग को जीतना था, और समुद्र को पैरों से चलकर पार करना था। सामने रावण जैसा महाशक्तिशाली राक्षस था। और युद्ध में सहायकों के रूप में चंचल स्वभाव वाले वानर थे। फिर भी अकेले राम ने सारे राक्षस समूह का विनाश किया। ठीक ही है किसी काम में सफलता अपने सत्व के कारण प्राप्त होती है। न कि साधनों से।

इस प्रकार असंभव को भी संभव बनाने के लिये प्रयत्नों को करने वाला राम होता है। यही है राम होने का एक अर्थ हम सबके लिए।

हजारों-हजार वर्षों पश्चात्

रामजन्मभू के लिए, हुए अमित बलिदान।
रामलला का है हुआ, है मंदिर निर्माण।।

त्रेता बीता, द्वापर गया कलियुग के भी पाँच हजार से अधिक वर्ष बीत गए। सतयुग से सूर्यवंशी चक्रवर्तियों की राजधानी रही अयोध्या में श्रीराम का जन्मस्थान आस्था का बड़ा केन्द्र रहा, यह इतिहास का अमिट सच है। कलियुग में सम्राट विक्रमादित्य ने यहाँ भव्य राम मंदिर बनवाया, और अनेक मंदिर बनवाए। वे देव संस्कृति के वर्तमान युग के अनन्य संवाहक थे।

लेकिन इस युग में भी राक्षसी संस्कृति, आतंकी शक्तियाँ थीं। वर्ष १५२८ ई. बाबर नामक मुगल, अयोध्या आया। उसके सेनापति मीरबांकी ने युगों-युगों से जमीं हिन्दू आस्था की जड़ों को उखाड़ने के लिए सीधे भारत के राष्ट्रपुरुष, भारत के संस्कृति पुरुष, भारत के धर्म स्वरूप श्रीराम की जन्मस्थली का पावन मंदिर ढहा दिया और एक ढांचा बनाकर उसे बाबरी मसजिद घोषित कर दिया। तब १५ दिन युद्ध चला १.७४ लाख राम भक्त बलिदान हुए। वर्ष १९४९ तक ७६ संघर्ष हुए कि राम का पावन जन्मस्थल विधर्मियों के कलंक चिह्न से मुक्त हो। राजाओं, साधु-संन्यासियों और सामान्यजनों के असंख्य बलिदान हुए पर सफलता न मिली।

१८५७ में भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया। तब अयोध्या के स्थानीय मुसलमान, सरदार अमीर अली के नेतृत्व में बाबा राघवदास से समझौता कर, यह स्थान छोड़ने को तैयार हुए थे पर अँग्रेजों ने दोनों को फाँसी दे दी।

२३ दिसम्बर १९४९ को राम भक्तों ने ढाँचे में रामलला की मूर्ति स्थापित कर दी। जब स्वतंत्र भारत के संविधान रचयिता, भारत के संविधान के तृतीय अध्याय में जहाँ नागरिकों के मूल अधिकार का उल्लेख है, राम-लक्ष्मण-सीता के चित्र बनवा रहे थे, तब इस ढाँचे के

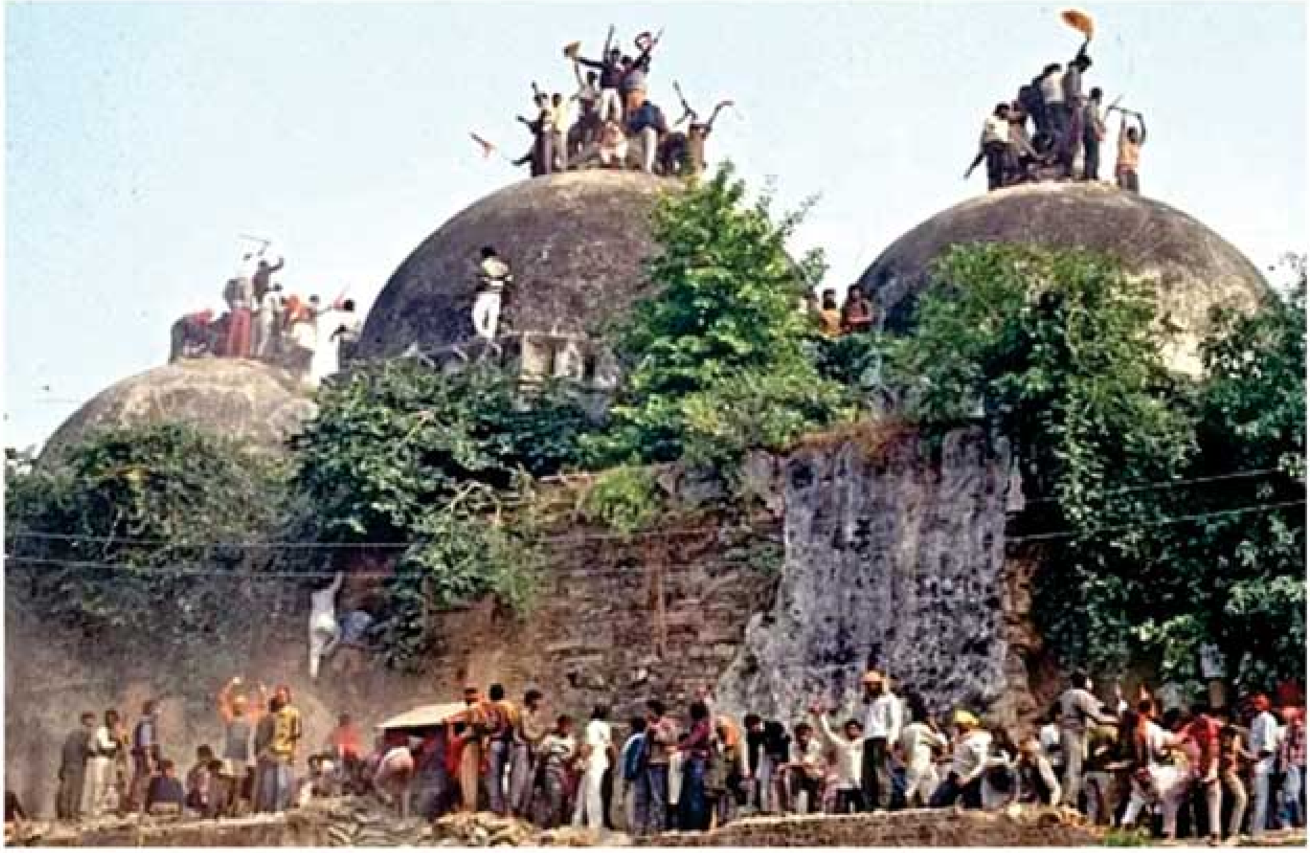

नीचे स्थापित रामलला के मंदिर पर तत्कालीन सरकार ने ताला डलवा दिया।

घटनाचक्र चलता रहा। उतार-चढ़ाव आते रहे, उससे भी अधिक आते रहे अड़ाव-फसाव।

अक्टूबर १९८४, 'श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति' ने देशभर में 'श्रीरामजानकी रथयात्रा' निकाली। जन सामान्य के अपार समर्थन के आगे सरकार पर दबाव बढ़ा और १ फरवरी १९८६ को जन्मभूमि स्थान का ताला खुलवाया गया। जुलाई १९८९ इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री देवकीनंदन अग्रवाल ने, न्यायालय में सम्पूर्ण परिसर को श्रीराम लला की सम्पत्ति घोषित करने को कहा। न्यायालय ने सम्पूर्ण वाद लखनऊ की पूर्णपीठ को सौंप दिए।

सितम्बर १९८९, दो लाख पचहत्तर हजार गाँवों व नगरों, में ६ करोड़ २५ लाख रामभक्तों ने श्रीराम शिला पूजन सम्पन्न किया और ९ नवम्बर १९८९ को प्रमुख संतों की उपस्थिति में शिलान्यास हुआ।

३० अक्टूबर १९९० को कारसेवा का अपूर्व अभियान चला। कारसेवकों ने गुम्बदों पर धर्मध्वज फहरा दिया। सरकार ने गोलियाँ चलवा दीं। अनेक कारसेवक बलिदान हुए। तत्कालीन मुख्यमंत्री की सत्ता चली गई। नई सरकार ने इस विवादित स्थल के आसपास की २.७७ एकड़ भूमि अधिग्रहीत कर ली। यहाँ अनेक पुरातात्विक अवशेष मिले, जो चीख-चीखकर कह रहे थे कि यहीं श्रीराम जन्मभूमि

मंदिर था। घोषणा कर रहे थे यही राम जन्मभूमि है।

अक्टूबर १९९२ दूसरी बार कारसेवा का आह्वान हुआ। ६ दिसम्बर १९९२ को तीनों गुम्बद ढहा कर श्रीराम लला का एक अस्थाई पट-मंदिर बना दिया गया।

लम्बी कानूनी लड़ाई चली। लिब्रहान आयोग बना। ४८ बार अपना कार्यकाल बढ़ाकर, इस आयोग ने ७०० पृष्ठ की रिपोर्ट सरकार को सौंपी। यह दिन था ३० जून २००९।

अन्ततः ९ नवम्बर २०१९ को उच्चतम न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने रामलला मंदिर के पक्ष में निर्णय सुनाया।

५ अगस्त २०२०, श्रीरामजन्मभूमि पर भव्य मंदिर का भूमि पूजन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्रमोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहनराव भागवत, उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ, स्वामी श्री गोविन्द गिरि जी और अन्य १७५ साधु-संतों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। यह कोरोना काल था इसलिए आयोजन स्थल पर सीमित संख्या ही रखी गई।

२२ जनवरी २०२४ को अत्यंत भव्य मंदिर में श्रीरामलला की प्रतिमा स्थापित होगी। सारा राष्ट्र ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में जहाँ-जहाँ श्रीराम भक्त हैं, अपने-अपने स्थानों पर श्रीराम मंदिर की भव्य प्राण-प्रतिष्ठा समारोह का अपूर्व उत्सव मनाएँगे।

आप भी चूकिए मत, यह अलभ्य अनमोल अवसर। यह अमर इतिहास का स्वर्णिम दिन है।

श्रीरामलला सरकार की जय।

हमारे अनेक अत्याधुनिक उत्पादों के संग पूरा भारत एक है। हर भारतीय घर रोशनी से जगमग है। देश बदलने वालों के लिए हम नई रोशनी है। नए - नए कीर्तिमान कर रहे हैं। व्यवसाय जगत में दुनिया की रुझान समझते हैं। चुनौतियों को भांप लेते हैं और फिर खुद को तेजी से बदल लेते हैं। काम करने का तरीका बेहतर बना रहे हैं और अच्छे परिणाम दे रहे हैं। भारत की तरह, जो लगातार तरक्की कर रहा है, नई ऊंचाई को छू रहा है, सूर्या ने भी पिछले 5 दशकों में सफलता की जो कहानी लिखी है वह अविश्वसनीय है

सन् 1973 में शुरुआत कर सूर्या ने एक लंबा और स्वर्णिम सफर तय किया है।

I am SURYA | CELEBRATING 50 YEARS OF TRUST | DURABLE PRODUCTS | ASSURED QUALITY

SURYA ROSHNI LIMITED
E-mail: consumercare@surya.in | www.surya.co.in | Tel.: +91-1147108000

Toll Free No.: 1800 102 5657
/suryalighting | /surya_roshni

भगवान श्रीराम की जन्मभूमि पर नव निर्मित भव्य मंदिर

आदिकाल में महाराज मनु द्वारा निर्मित अयोध्यापुरी, युगों–युगों से हिन्दू आस्था का महान केन्द्र रही है। लगभग पाँच सौ वर्षों के कठिन संघर्ष और अनेक बलिदानों के बाद, अब २२ जनवरी २०२४ को, श्री अयोध्याधाम में निर्मित भव्य मंदिर में भगवान श्रीरामलला की प्राण प्रतिष्ठा की जा रही है। अपने अद्भुत शिल्प एवं एक हजार वर्ष तक स्थाई रहने की क्षमता वाले इस निर्माण में, अनेक ऐसी विशेषताएँ समाहित की गई हैं, जिनका दर्शन करके करोड़ों हिन्दूजन, शताब्दियों तक अपने को धन्य करते रहेंगे। आप हम सभी, अवर्णनीय दिव्य मंदिर में भगवान श्रीरामलला का दर्शन करने का अवसर मिलते ही अवश्य जाएँ और अपने जीवन को धन्य करें।

डाक पंजीयन : एम.पी./आय.डी.सी./६२३/२०२१-२०२३ आर.एन.आय. पं. क्रं. ३८५७७/८५
प्रकाशन तिथि २०/१२/२०२३ प्रेषण तिथि ३०/१२/२०२३ प्रेषण स्थल- आर.एम.एस., इन्दौर

जुलाई २०२२ के अंक से देवपुत्र का संशोधित मूल्य निम्नानुसार है।

एक अंक ३०/- वार्षिक सदस्यता २००/- १५ वर्षीय सदस्यता २०००/-

एक ही पते पर १० या अधिक अंक एक साथ मँगवाने पर वार्षिक शुल्क १५०/- प्रति अंक

कृपया शुल्क भेजते समय चेक/ड्राफ्ट पर केवल
'सरस्वती बाल कल्याण न्यास' लिखें।

बाल साहित्य और संस्कारों का अग्रदूत

सचित्र प्रेरक बाल मासिक
देवपुत्र सचित्र प्रेरक बहुरंगी बाल मासिक

स्वयं पढ़िए औरों को पढ़ाइये

अब और आकर्षक साज-सज्जा के साथ

अवश्य देखें- वेबसाईट : www.devputra.com

सरस्वती बाल कल्याण न्यास, इन्दौर के लिए मुद्रक एवं प्रकाशक कृष्णकुमार अष्ठाना द्वारा टी.एन. ट्रेडर्स, सांवेर रोड, इन्दौर से मुद्रित एवं ४०, संवाद नगर, इन्दौर से प्रकाशित
प्रधान सम्पादक - कृष्णकुमार अष्ठाना